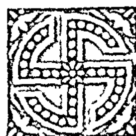
नमस्कार महामंत्र

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच णमोक्कारो, सव्व-पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ।



// श्री महावीराय नमः //

// जय नानेश //

// जय रामेश //

नाम -> मोहित चोरड़िया

जैन संस्कार पाठ्यक्रम
भाग - 3

संकलनकर्ता

मदनलाल कटारिया

प्रकाशक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

बीकानेर

जैन संस्कार पाठ्यक्रम भाग -3

पूर्व में मुद्रित प्रतियाँ 20500

छठा संस्करण -

प्रतियाँ - 5100 सन् 2008

मूल्य - रुपए 5/-

अर्थ सौजन्य - शासननिष्ठ दानवीर श्रेष्ठिवर्य श्री विमलचन्दजी सोहनलालजी सिपाणी परिवार बैंगलोर

पुस्तक एवं परीक्षा फार्म प्राप्ति स्थल

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ,
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर (राज.) फोन-0151-2544867, 3292177

श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार
समता भवन, नौलाईपुरा, रतलाम-457001 (म.प्र.) फोन-07412-244443

Sampat Nursing Home
4, Nachiappa Street, Mylapore, CHENNAI-600004 ☎ 4980572, 498002, 4980578

श्री सोहनलालजी विमलचन्दजी सिपाणी
831, 13th मेन II ब्लॉक, कोरमंगला, बैंगलोर
☎ 25537878 (नि.), 25537833 (ऑ)

श्री जवाहर मित्र मण्डल
उन बजार, ब्यावर, जिला-अजमेर (राज.)

श्री सायरचन्दजी छल्लाणी
पारसमनी, 4 वेस्ट प्रतापनगर, मेन पटेल नगर, न्यू देहली
☎ 0124 - 5052629, 011 - 25883344

श्री पृथ्वीराज जी पारख
पारख ट्रेडर्स, आपापुरी, कचहरी रोड, पो. दुर्ग - 491001
फोन (0788) 2324255 (नि.) 2324554 (ऑ)

प्रकाशक
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर - 334005 (राज.)
फोन (0151) 2544867, 3292177

मुद्रक
छाजेड प्रिन्टरी प्रा. लि., 108, स्टेशन रोड, रतलाम (म. प्र.)
फोन (07412) 230557

भूमिका

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ द्वारा अनेक धार्मिक एव सामाजिक गतिविधियाँ चलाई जा रही है, जिनमे 'धार्मिक परीक्षा बोर्ड' भी एक है, सन् 1974 से ये परीक्षा निरन्तर चल रही है जिसके माध्यम से ज्ञानार्जन करने वालो के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित कर परीक्षाएँ ली जाती रही है। विभिन्न प्रसगो पर परमागम रहस्यज्ञाता, व्यसनमुक्ति प्रणेता 1008 श्रद्धेय गुरुवर आचार्य श्री रामलालजी म सा से तत्त्व चर्चा का अवसर प्राप्त होता रहा है। तत्त्व चर्चा के दौरान बदलते परिवेश के अनुरूप नए पाठ्यक्रम की आवश्यकता अनुभूत हुई।

अतएव जैन सस्कार पाठ्यक्रम के नाम से नवीन पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया है जिसमे भाग 1 से 12 तक प्रस्तुत किए गए हैं, जो वर्ष 2003 से निरन्तर गतिमान है। इससे जैन धर्म के मूल सिद्धान्तो का ज्ञान प्राप्त होगा तथा विशेष ज्ञानार्जन प्राप्त कर जीवन मे कुछ पा सकेगे, ऐसा विश्वास है। पाठ्यक्रम को सुरुचिपूर्ण एव सुबोध बनाने के लिए साहित्य की विविध विधाओ से सम्पन्न बनाया गया है।

पाठ्यक्रम के सकलन मे प्रत्यक्ष एव परोक्ष रूप से जिनका भी मार्गदर्शन एव सहयोग मिला, उनके प्रति हृदय से आभार व्यक्त करते है।

सभी श्री संघो एव चातुर्मासिक क्षेत्रो के धर्मानुरागी भाई-बहिनों से अनुरोध है कि अधिक-से-अधिक इन परीक्षाओ मे भाग लेकर ज्ञान की श्रीवृद्धि मे योगदान प्रदान करे। इसी शुभेच्छा के साथ।

विनीत

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

बीकानेर

परीक्षा के नियम

परीक्षा में भाग लेने वाले विद्यार्थियों को फार्म भरना आवश्यक है कम से कम दस परीक्षार्थी होने पर परीक्षा केन्द्र खोला जा सकेगा।

1. पाठ्यक्रम - भाग 1 से 12 तक

2 योग्यता - ज्ञानार्जन का अभिलाषी

3. परीक्षा का समय - माह आसोज, विदी पक्ष

4. श्रेणी निर्धारण

विशेष योग्यता - 75% से 100%

प्रथम श्रेणी - 60% से 74%

द्वितीय श्रेणी - 46% से 59%

तृतीय श्रेणी - 35% से 45%

5. परीक्षा फल - परीक्षा फल का प्रकाशन पत्रिका श्रमणोपासक में तथा परीक्षा केन्द्रों पर उपलब्ध रहेगा।

6. प्रमाण-पत्र - सम्बन्धित परीक्षा केन्द्रों पर प्रमाण-पत्र भिजवायें जाएंगे।

7. पारितोषिक - प्रत्येक परीक्षा में प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा प्रोत्साहन पुरस्कार।

अनुक्रम

श्रावक-प्रतिक्रमण

।। इच्छामि णं भंते का पाठ ।।

इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे देवसियं* पडिक्कमणं ठाएमि, देवसिय णाण दंसण चरित्ताचरित्त तव अइयार चिंतणत्थं करेमि काउस्सग्गं।

।। इच्छामि ठामि का पाठ ।।

इच्छामि ठाइउं (ठामि) काउस्सग्गं** जो मे देवसिओ *** अइयारो कओ, काइओ, वाइओ माणसिओ, उस्सुत्तो, उम्मग्गो, अकप्पो अकरणिज्जो, दुज्झाओ, दुव्विचिंतिओ, अणायारो, अणिच्छिअव्वो, असावगपाउग्गो 'नाणे तह दंसणे चरित्ताचरित्ते, सुए, सामाइए, तिण्हं गुत्तीणं, चउण्हं कसायाणं, पंचण्हमणुव्वयाणं, तिण्हं गुणव्वयाणं चउण्हं सिक्खावयाणं, बारसविहस्स सावगधम्मस्स, जं खंडियं जं विराहियं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

।। ज्ञान के अतिचारों का पाठ ।।

आगमे तिविहे पण्णत्ते, तंजहा-सुत्तागमे अत्थागमे तदुभयागमे, इस तरह तीन प्रकार के आगम रूप ज्ञान के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउंजं वाइद्धं, वच्चामेलियं, हीणक्खरं, अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, जोगहीणं, घोसहीणं, सुट्ठुदिण्णं, दुट्ठुपडिच्छियं, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ, असज्झाइए सज्झाइयं, सज्झाइए न सज्झाइयं भणतां गुणतां विचारतां ज्ञान और ज्ञानवंत पुरुषों की अविनय आशातना की हो तो जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

---

* जहाँ-जहाँ देवसिय शब्द आवे वहाँ-वहाँ देवसिय के स्थान पर सुबह के प्रतिक्रमण में 'राइय' पाक्षिक मे 'पक्खिय' चातुर्मासिक मे 'चाउम्मासिय' और सांवत्सरिक मे 'सवच्छरिय' शब्द बोलना चाहिये।

** कायोत्सर्ग के पहले 'इच्छामि ठाइउ 'काउस्सग' और कायोत्सर्ग में 'इच्छामि आलोउ' तथा अन्य स्थानो पर 'इच्छामि पडिक्कमिउ' बोलना चाहिये।

*** जहाँ-जहाँ भी 'देवसिओ' शब्द आवे वहा शाम के प्रतिक्रमण मे 'देवसिओ' सुबह के प्रतिक्रमण मे 'राइओ' पाक्षिक प्रतिक्रमण मे 'पक्खिओ' चातुर्मासिक प्रतिक्रमण मे 'चाउम्मासिओ' और सावत्सरिक प्रतिक्रमण मे ''सवच्छरिओ'' पाठ बोलना चाहिये।

ताम्बा, लोहा आदि धातु का तथा इससे बने हुए बर्तन आदि और शय्या, आसन, वस्त्र आदि घर सम्बन्धी वस्तुओं) का परिमाण अतिक्रमण किया हो, जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

छठे दिशिव्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-1 ऊँची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 2 नीची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 3. तिरछी दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 4. क्षेत्र बढाया हो, 5. क्षेत्र का परिमाण भूल जाने से पथ का संदेह पड़ने पर आगे चला हो, जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सातवाँ उपभोग परिभोग-परिमाण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं। 1. पच्चक्खाण उपरान्त सचित्त का आहार किया हो, 2. सचित्त पडिबद्ध का आहार कया हो, 3. अपक्व का आहार किया हो, 4. दुष्पक्व का आहार किया हो, 5. * तुच्छौषधि का आहार किया हो। जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

पन्द्रह कर्मदान - जो श्रावक के जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नहीं है। इनमे जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊँ।

1. इंगालकम्मे, 2 वणकम्मे, 3. साडीकम्मे, 4. भाडीकम्मे, 5. फोडीकम्मे, 6 दन्त वाणिज्जे, 7. लक्खवाणिज्जे, 8. रसवाणिज्जे, 9. केसवाणिज्जे 10. विसवाणिज्जे 11. जंतपीलणकम्मे, 12. निल्लंछणकम्मे, 13. दवग्गिदावणया 14. सरदहतलाय सोसणया 15. असईजणपोसणया, जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

आठवें अनर्थदंड-विरमणव्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1 , कामविकार पैदा करने वाली कथा की हो, 2 भंड-कुचेष्टा की हो, 3 मुखरी वचन बोला हो, 4. अधिकरण यानी हिंसाकारी उपकरणों का संग्रह किया हो, 5. उपभोग-परिभोग अधिक बढाया हो, जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

* जिसमे खाने योग्य अश तो थोडा हो और अधिक फेंकना पड़े, उसे तुच्छौषधि कहते हैं जैसे मूंगफली, सीताफल, गन्ना (गंडेरी) आदि।

** अधिक हिंसा वाले धन्धो से आजीविका चलाना कर्मादान है अथवा जिन धन्धों से उत्कृष्ट ज्ञानावरणीय आदि कर्मो का बध होता है उन्हें कर्मादान कहते हैं।

नवें सामायिक व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं 1-3 मन, वचन और काया के अशुभ योग प्रवर्त्तायें हों, 4. सामायिक की स्मृति न की हो, 5 समय पूर्ण हुए बिना सामायिक पारी हो, जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

दशवॉ देशावकाशिक व्रत के विषय जो कोई अति चार लगा हो तो आलोउ- 1. नियमित सीमा के बाहर की वस्तु मंगवाई हो, 2. भिजवाई हो, 3 शब्द करके चेताया हो, 4. रूप दिखा करके अपने भाव प्रकट किए हो, 5. कङ्कर आदि फेक कर दूसरे को बुलाया हो, जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

ग्यारहवें प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1 पौषध मे शय्या संथारा न देखा हो या अच्छी तरह से न देखा हो, 2. प्रमार्जन न किया हो या अच्छी तरह से न किया हो, 3. उच्चार पासवण की भूमि को देखी न हो या अच्छी तरह से न देखी हो, 4. पूजी न हो या अच्छी तरह से न पूंजी हो, 5.उपवास युक्त पौपध का सम्यक् प्रकार से पालन न किया हो, जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

बारहवें अतिथिसंविभाग-व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ- 1 अचित्त वस्तु सचित्त पर रखी हो, 2 अचित्त वस्तु सचित्त से ढाकी हो, 3 साधुओ को भिक्षा देने के समय को टाल दिया हो, 4 दान नहीं देने की बुद्धि से अपनी वस्तु दूसरे की कही हो, 5 ईर्ष्याभाव से दान दिया हो, जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

संलेखना के पॉच अतिचारों का पाठ

अपच्छिम-मारणंतिय-संलेहणा-झूसणा-आराहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं-इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगासंसप्पओगे जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

समुच्चय का पाठ

इस प्रकार 14 ज्ञान के 5 दर्शन (सम्यक्त्व) के, 60 बारह व्रतों के, 15

कर्मादान के, 5 संलेखना के- इन 99 अतिचारों में से किसी भी अतिचार का जानते-अजानते मन, वचन, काया से सेवन किया हो, कराया हो, करते को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

अठारह पापस्थान का पाठ

अठारह पापस्थान आलोउं- पहला प्राणातिपात, दूजा मृषावाद, तीजा अदत्तादान, चौथा मैथुन, पॉचवॉ परिग्रह, छठा क्रोध, सातवॉ मान, आठवॉ माया, नवॉ लोभ, दसवॉ राग, ग्यारहवॉ द्वेष, बारहवॉ कलह, तेरहवॉ अभ्याख्यान, चौदहवाँ पैशुन्य, पन्द्रहवॉ परपरिवाद, सोलहवॉ रति-अरति, सतरहवॉ माया मृषावाद, अट्ठारहवॉ मिथ्यादर्शन शल्य, इन अठारह पाप स्थानों में से किसी का सेवन किया हो, सेवन कराया हो और सेवन करते हुए को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

इच्छामि खमासमणो का पाठ

इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए अणुजाणह मे मिउग्गहं निसीहि 'अहो कायं काय' संफासं खमणिज्जो भे किलामो अप्पकिलंताणं बहुसुभेणं भे दिवसो वइक्कंतो*, "जत्ता भे जवणिज्जं च भे"

* नोट- रात्रिक प्रतिक्रमण मे- "दिवसो वइक्कतो" के स्थान पर "राइ वइक्कंतो" "देवसिय वइक्कम" के स्थान पर "राइय वइक्कम" "देवसियाए आसायणाए" के स्थान पर "राइयाए आसायणाए" "देवसिओ अइयारो" के स्थान पर "राइओ अइयारो"। पाक्षिक प्रतिक्रमण मे "दिवसो वइक्कतो" के स्थान पर "पक्खी वइक्कतो", "देवसियं वइक्कम" के स्थान पर "पक्खियं वइक्कमं", देवसियाए आसायणाए" के स्थान पर " पक्खि आसायणाए एव देवसियो अइयारो के स्थान पर "पक्खिओ अइयारो"। चातुर्मासिक प्रतिक्रमण मे- "दिवसो वइक्कतो" के स्थान पर "चाउम्मासो-वइक्कंतो।" "देवसियं वइक्कम" के स्थान पर "चाउम्मासिय वइक्कमं" "देवसियाए आसायणाए" के स्थान पर "चाउम्मासियाए आसायणाए" "देवसिओ अइयारो" के स्थान पर "चाउम्मासिओ अइयारो"। एव सवत्सरी प्रतिक्रमण मे- "दिवसो वइक्कतो" के स्थान पर "सवच्छरो वइक्कतो" "देवसिय वइक्कम" के स्थान पर "संवच्छरिय वइक्कम" देवसियाए आसायणाऐ के स्थान पर "सवच्छरीयाए आसायणाए" "देवसिओ अइयारो" के स्थान पर "संवच्छरिओ अइयारो" पाठ वोलना चाहिये।

खामेमि खमासमणो ! देवसियं वइक्कमं * आवस्सियाए पडिक्कमामि। खमासमणाणं देवसिआए आसायणाए * तित्तीसन्नयराए जं किंचि मिच्छाए मणदुक्कडाए वयदुक्कडाए कायदुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोहाए सव्वकालियाए सव्वमिच्छोवयाराए सव्वधम्माइक्कमणाए आसायणाए जो मे देवसिओ अइयारो* कओ, तस्स खमासमणो ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

तस्स सव्वस्स का पाठ

तस्स सव्वस्स देवसियस्स* अइयारस्स दुब्भासियदुचिंतियदुचिट्ठियस्स आलोयन्तो पडिक्कमामि।

चत्तारि मंगलं का पाठ

चत्तारि मंगलं-अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

अरिहंतों का शरणा, सिद्धों का शरणा, साधुओ का शरणा, केवलीप्ररूपित धर्म का शरणा।

चार शरणा दुःख हरणा, और न शरणा कोय।
जो भवी प्राणी आदरे, अक्षय अमर पद होय॥

दंसण समकित का पाठ

परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठ-परमत्थ-सेवणा वावि।
वावण्ण-कुदंसण-वज्जणा, य सम्मत्तसद्दहणा।

एवं समणोवासएणं सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न

---

* नोट- देवसियस्स के स्थान पर रात्रि के प्रतिक्रमण में "राइयस्स" पाक्षिक प्रतिक्रमण में "पक्खियस्स" चातुर्मासिक प्रतिक्रमण मे "चाउम्मासियस्स" सवत्सरी प्रतिक्रमण में "सवच्छरियस्स" पाठ बोलना।

समायरियव्वा, तंजहा ते आलोउं-संका, कंखा, वितिगिच्छा, परपासंडपसंसा परपासंडसंथवो जो में देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

बारह व्रतों के अतिचार सहित पाठ

पहला अणुव्रत-थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं त्रस जीव बेइंदिय, तेइंदिय, चउरिंदिय, पंचिंदिय जान के पहिचान के संकल्प करके उसमें स्वसम्बन्धी शरीर के भीतर में पीड़ाकारी, सापराधी को छोड़कर निरपराधी को आकुट्टी (हनने) की बुद्धि से हनने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, ऐसे पहले स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत के पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं-बंधे, वहे, छविच्छेए, अइभारे, भत्तपाणविच्छेए जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

दूजा अणुव्रत थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं-कन्नालीए, गोवालीए, भोमालीए, णासावहारो (थापणमोसो), कूडसक्खिज्जे (कूड़ी साख) इत्यादिक मोटा झूठ बोलने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा, वयसा, कायसा एवं दूजा स्थूल मृषावाद विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा ते आलोउं-सहसब्भक्खाणे, रहस्सब्भक्खाणे, सदारमन्तभेए, मोसोवएसे, कूडलेहकरणे जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

तीजा अणुव्रत थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं खात खन कर, गॉठ खोल कर, ताले पर कुंजी लगा कर, मार्ग में चलते को लूट कर, पड़ी हुई धणियाती मोटी वस्तु जान कर लेना इत्यादि मोटा अदत्तादान का पच्चक्खाण, सगे सम्बन्धी, व्यापार सम्बन्धी तथा पड़ी निर्भ्रमी वस्तु के उपरान्त अदत्तादान का पच्चक्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं- न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं तीजा स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं-तेनाहडे, तक्करप्पओगे,

विरुद्धरज्जाइक्कमे, कूडतुल्लुकूडमाणे, तप्पडिरूवगववहारे, जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

चौथा अणुव्रत थूलाओ मेहुणाओ वेरमणं* सदारसंतोसिए, अवसेसमेहुणविहिं पच्चक्खामि जावज्जीवाए देव देवी सम्बन्धी दुविहं तिविहेणं- न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा तथा मनुष्य तिर्यञ्च सम्बन्धी एगविहं एगविहेणं- न करेमि कायसा, एवं चौथा स्थूल स्वदार संतोष, परदार** विवर्जन रूप मैथुन विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं-इत्तरिय परिग्गहिया गमणे, अपरिग्गहिया गमणे*** अनंगकीडा, परविवाहकरणे, कामभोग तिव्वाभिलासे, जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पाँचवाँ अणुव्रत थूलाओ परिग्गहाओ वेरमणं-खेत्तवत्थु का यथा परिमाण, हिरण्ण सुवण्ण का यथा परिमाण, धन-धान्य का यथा परिमाण, दुपय-चउप्पय का यथा परिमाण, कुप्य का यथा परिमाण, जो परिमाण किया है, उसके उपरान्त अपना करके परिग्रह रखने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा, वयसा, कायसा एवं पाँचवाँ स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं-खेत्तवत्थुप्पमाणाइक्कमे, हिरण्णसुवण्णप्पमाणाइक्कमे, धणधण्णप्पमाणाइक्कमे, दुपयचउप्पयप्पमाणाइक्कमे, कुवियप्पमाणाइक्कमे जो में देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

छठा दिशिव्रत उड्ढदिसि का यथा परिमाण, अहोदिसि का यथा परिमाण, तिरियदिसि का यथा परिमाण एवं यथा परिमाण किया है, उसके उपरान्त स्वेच्छा

---

* सदार सतोसिए ऐसा पुरुष को बोलना चाहिये और स्त्री को सभत्तार सतोसिए ऐसा बोलना चाहिये जिसको सर्वथा प्रकार से मैथुन सेवन का त्याग हो, उसका 'सदार सतोसिए अवसेस मेहुण विहि' के स्थान पर 'सव्वप्पगार मेहुण' बोलना चाहिए।

** श्राविकाएँ 'स्वपति सतोष पर पुरुष' विवर्जन रूप मैथुन करे।

*** श्राविकाएँ - इत्तरियपरिग्गहियगमणे, अपरिग्गहिय गमणे करे।

काया से आगे जाकर पाँच आश्रव सेवन का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविहं**** तिविहेणं न करेमि मणसा, वयसा कायसा एवं छठे दिशिव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं- उड्ढदिसिप्पमाणाइक्कमे, अहोदिसिप्पमाणाइक्कमे, तिरियदिसिप्पमाणाइक्कमे, खित्तवुड्ढी सइअन्तरद्धा, जो में देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

सातवाँ व्रत-उवभोगपरिभोगविहिं पच्चक्खायमाणे 1. उल्लणियाविहि, 2. दंतणविहि, 3. फलविहि, 4. अब्भंगणविहि 5. उव्वट्टणविहि, 6. मज्जणविहि, 7. वत्थविहि, 8.विलेवणविहि, 9.पुप्फविहि, 10.आभरणविहि 11.धूवविहि, 12. पेज्जविहि, 13. भक्खणविहि 14.ओदणविहि, 15 .सूवविहि, 16. विगयविहि, 17. सागविहि, 18. माहुरविहि, 19. जीमणविहि 20.पाणीयविहि, 21.मुखवासविहि, 22.वाहणविहि, 23. उवाणहविहि, 24.सयणविहि, 25. सचित्तविहि, 26.दव्वविहि, इन 26 बोलों का यथा परिमाण किया है, इसके उपरान्त उपभोगपरिभोग वस्तु को भोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा, वयसा, कायसा एवं सातवॉ उवभोग परिभोग दुविहे पण्णत्ते तंजहा-भोयणाओ य, कम्मओ य भोयणाओ समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा ते आलोउं सचित्ताहारे, सचित्तपडिबद्धाहारे, अप्पउलिओसहिभक्खणया, दुप्पउलिओसहिभक्खणया, तुच्छोसहिभक्खणया, कम्मओ य णं समणोवासएणं पण्णरस कम्मादाणाइं जाणियव्वाइं न समायरियव्वाइं तंजहा ते आलोउं इंगालकम्मे, वणकम्मे, साडीकम्मे, भाडीकम्मे, फोडीकम्मे, दंतवाणिज्जे, लक्खवाणिज्जे, रसवाणिज्जे, केसवाणिज्जे, विसवाणिज्जे, जंतपीलणकम्मे, निल्लंछणकम्मे, दवग्गिदावणया, सरद्दहतलायसोसणया, असई जणपोसणया जो में देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

--**--

**** 'एगविहं तिविहेणं न करेमि' की जगह कोई-कोई 'दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि' बोलते हैं।

पच्चीस बोल का थोकड़ा

पहले बोले गति ४ - नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति।

प्रश्न - गति किसे कहते हैं ?

उत्तर - संसारी जीव मरकर जहॉ जाते है उसके गति कहते है।

प्रश्न - नरक गति किसे कहते हैं।

उत्तर - नरक गति नामकर्म के उदय से प्राप्त जीवो की गति को नरक गति कहते हैं। जो जीव अत्यन्त पाप कर्म करते है, मर कर नरक मे जाते है उन्हें घोर कष्टो का सामना करना पडता है।

प्रश्न - तिर्यंच गति किसे कहते हैं ?

उत्तर - तिर्यच गति नाम कर्म के उदय से प्राप्त जीवो की गति तिर्यचगति है। जो जीव झूठ बोलते हैं, छल-कपट करते है, व्यापार मे धोखा देते हैं, वे मरकर प्राय· पशु-पक्षी की योनी मे जाते है।

प्रश्न - मनुष्य गति किसे कहते हैं ?

उत्तर - मनुष्य गति नाम कर्म के उदय से प्राप्त जीवो की गति को मनुष्य गति कहते हैं। जो जीव स्वभाव से भद्र, विनयवान और दयालु होते हैं, वे मरकर प्राय. मनुष्य होते है।

प्रश्न - देव गति किसे कहते हैं ?

उत्तर - देव गति नाम कर्म के उदय से प्राप्त जीवो की गति को देव गति कहते हैं। जो जीव शुभकर्म करने वाले हैं, जो सराग संयमादि पालते हैं वह प्राय. देव होते हैं।

दूसरे बोले जाति ५ -एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय।

प्रश्न - जाति किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिसमे जीव का जन्म हो अर्थात् समान इन्द्रिय वाले जीवों के समूह तथा जाति नाम कर्म के उदय से प्राप्त हुई जीव की एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि रूप पर्याय को जाति कहते है।

एकेन्द्रिय - जिसके सिर्फ स्पर्श इन्द्रिय ही हो, जैसे - मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु, और वनस्पति के जीव।

बेइन्द्रिय - जिन जीवों में स्पर्श, रसना (जिव्हा) ये दो इन्द्रियाँ हों, जैसे - सीप, शंख, जोक, अलसिया (वर्षा के समय उत्पन्न जीव) आदि।

तेइन्द्रिय - जिन जीवों में स्पर्श, रसना, घ्राण (नासिका) ये तीन इन्द्रियॉं हों, जैसे -जूं, लीख, चींटी, कुंथवा, खटमल आदि।

चउरिन्द्रिय - जिन जीवों में स्पर्श, रसना, घ्राण एवं चक्षु (ऑख) ये चार इन्द्रियॉं हों, जैसे-मक्खी, मच्छर, भंवरा, पतंगिया, बिच्छु आदि।

पंचेन्द्रिय - जिन जीवों में स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत (कान) ये पॉंच इन्द्रियॉं हों जैसे - नारकी, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि।

तीसरे बोले काया ६ - पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय (तेजस्काय), वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय।

प्रश्न - **काय किसे कहते हैं ?**

उत्तर - शरीर के योग्य पुद्‌गलों के समुदाय को काया कहते हैं।

पृथ्वीकाय - पृथ्वी ही जिन जीवों का शरीर है, जैसे-मिट्टी, हिंगलु, हडताल, पत्थर, नमक, धातु, हीरा, पन्ना आदि।

अपकाय - पानी ही जिन जीवों का शरीर है, जैसे-बरसात, ओस, धुंअर, कुआं, बावड़ी, समुद्र आदि का पानी।

तेउकाय - अग्नि ही जिन जीवो का शरीर है, जैसे-झाल की अग्नि, बिजली की अग्नि, उल्कापात आदि।

वायुकाय - हवा ही जिन जीवों का शरीर है, जैसे-उक्कलिया वायु, मंडलिया वायु, धनवायु, तनवायु पूर्वादि की वायु आदि।

वनस्पति - वनस्पति ही जिन जीवो का शरीर है, जैसे - वृक्ष, लता, फल, फूल, शाक, भाजी गेहूँ, धान आदि।

वनस्पति के दो भेद- सुक्ष्म और बादर

बादर वनस्पति के दो भेद - **प्रत्येक और साधारण**

एक शरीर मे एक जीव हो उसे 'प्रत्येक' कहते है। जैसे आम, अंगूर, मूग, मोठ, बड, पीपल, गेहूँ, धान।

जिन जीवों के आहार, आयु, श्वासोच्छ्वास और काय ये साधारण (समान अथवा एक) हो उसको साधारण वनस्पति कहते हैं। जैसे जमीकंद, काई, उगता हुआ अंकुरादि।

त्रसकाय - जिन जीवो के त्रस नाम कर्म का उदय होता है वे त्रस जीव है। जो जीव सर्दी, गरमी आदि से बचने के लिये चल-फिर सकते है, उसे त्रस काय कहते है। जैसे बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय।

चौथे बोले इन्द्रियाँ ५ - श्रोतेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय

प्रश्न - इन्द्रियॉ किसे कहते हैं ?

उत्तर - इन्द्र का अर्थ आत्मा। जिसके माध्यम से छद्मस्थ आत्मा शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श का ज्ञान कराती है, उसे इन्द्रिय कहते है।

पॉचवें बोले पर्याप्ति ६ - आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोश्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति और मनः पर्याप्ति

प्रश्न - पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर - आहारादि के पुद्गलो को ग्रहण करने तथा उन्हे आहार शरीरादि रूप मे परिमणाने की आत्म शक्ति विशेष को पर्याप्ति कहते हैं।

छठे बोले प्राण १०- १. श्रोतेन्द्रिय बलप्राण २. चक्षुरिन्द्रिय बलप्राण, ३. घ्राणेन्द्रिय बलप्राण, ४. रसनेन्द्रिय बलप्राण ५. स्पर्शनेन्द्रिय बलप्राण, ६. मनोबलप्राण, ७. वचन बलप्राण, ८. काय बलप्राण, ९. श्वासोश्वास बलप्राण १०. आयुष्य बलप्राण

प्रश्न - प्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिसके सहारे से जीव जीवित रहे उन्हें प्राण कहते हैं। इन दस प्राणों मे मूल प्राण आयुष्य है, शेष प्राण इसके कार्य साधक है। यदि आयुष्य बल प्राण न रहे तो शेष सभी प्राण निष्फल हो जाते हैं।

सातवें बोले शरीर ५ - औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस् और कार्मण

प्रश्न - शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो समय-समय पर जीर्ण-शीर्ण होकर क्षीण होता जाता है, उसे शरीर कहते हैं।

प्रश्न - औदारिक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर - औदारिक शरीर नाम कर्म के उदय से प्राप्त शरीर तथा उदार-अर्थात् स्थूल पुद्गलों से बने हुए शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं।

प्रश्न - वैक्रिय शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर - वैक्रिय शरीर नामकर्म के उदय से प्राप्त शरीर को अर्थात् जिस शरीर से विविध क्रियाएँ (छोटे-बड़े, एक अनेक आदि नाना प्रकार के रूप बनाने की शक्ति) होती है, तथा वैक्रिय पुद्गलों से बना होता है, उसे ''वैक्रिय शरीर'' कहते हैं।

प्रश्न - आहारक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर - आहारक शरीर नाम कर्म के उदय से प्राप्त, आहारक पुद्गलों से बना हुआ शरीर आहारक कहलाता है।

प्रश्न - आहारक शरीर कौन, कब और कैसा बनाते हैं ?

उत्तर - आहारक लब्धि से युक्त छट्ठे गुणस्थान वर्ती १४ पूर्व धारी मुनिराज प्राणी दया, तीर्थकरों की ऋद्धि का दर्शन, सूक्ष्म पदार्थो को समझने एवं संशय निवारण इन चार कारणों से मूल शरीर से एक हाथ प्रमाण अति विशुद्ध स्फटिक के समान निर्मल आहारक पुद्गलों का पुरुषाकार पुतला निकालते हैं। इसकी अवगाहना जघन्य देशोन एक हाथ, उत्कृष्ट परिपूर्ण एक हाथ की होती है।

प्रश्न - तैजस् शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर - तैजस् शरीर नामकर्म के उदय से तैजस् पुद्गलो से वना शरीर तैजस् शरीर कहलाता है। यह उष्मारूप और आहार को पचाकर उसे रसादि मे परिणत करने मे सहायक है व तेजोलब्धि का हेतु है।

प्रश्न - कार्मण शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर - कार्मण शरीर नामकर्म के उदय से प्राप्त शरीर को कार्मण शरीर कहते है, अर्थात् जीव के प्रदेशों के साथ लगे हुए आठ प्रकार के कर्म पुद्गलो को कार्मण शरीर कहते है। तैजस् व कार्मण ये दो शरीर सभी ससारी जीवो मे होते है।

आठवें बोले योग १५ - १. सत्य मनोयोग, २. असत्य मनोयोग, ३. मिश्र मनोयोग, ४. व्यवहार मनोयोग, ५. सत्यभाषा, ६. असत्य भाषा, ७. मिश्र भाषा, ८. व्यवहार भाषा, ९. औदारिक काययोग १०. औदारिक मिश्र काययोग ११. वैक्रिय काययोग १२. वैक्रिय मिश्र काययोग १३. आहारक काययोग १४. आहारक मिश्र काययोग १५. कार्मण काययोग।

प्रश्न - योग किसे कहते हैं ?

उत्तर - मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को योग कहते है।

नौवें बोले उपयोग १२ - पॉच ज्ञान - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्यायज्ञान और केवलज्ञान।

तीन अज्ञान - मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंगज्ञान।

चार दर्शन - चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन और केवलदर्शन।

प्रश्न - उपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर - ज्ञान, दर्शन मे होती हुई आत्म-प्रवृत्ति को उपयोग कहते है।

दसवें बोले कर्म ८

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम,

गोत्र और अन्तराय।

प्रश्न - कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग के निमित्त से जिन कार्मण वर्गणा रूप पुद्गलो का आत्मा के साथ बंध होता है, उसे कर्म कहते है। इसके ८ भेद हैं।

१. ज्ञानावरणीय कर्म - जो कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को ढॉकता है।

२. दर्शनावरणीय कर्म - जो आत्मा के देखने की शक्ति को ढॉकता है।

३. वेदनीय कर्म - जिस कर्म के फल से सुख-दुख भोगा जाता है।

४. मोहनीय कर्म - जिस कर्म से आत्मा धर्म से विमुख हो, पाप मे प्रवृत हो, क्रोध, मान, माया और लोभ में समय व्यतीत करे, जिससे आत्मा मोहित (सत्, असत् के ज्ञान से शून्य) हो जाए।

५. आयुकर्म - जिस कर्म के उदय से जीव चार गतियों मे रुका रहे।

६. नामकर्म - जिस कर्म से आत्मा गति आदि नाना पर्यायों का अनुभव करें (शरीर आदि बने या जो जीव के अमूर्तत्व गुण को प्रगट न होने दे।)

७. गोत्रकर्म - जिस कर्म से जीव ऊँच-नीच कुलों में उत्पन्न हो।

८. अंतराय कर्म - जिस कर्म से दान, लाभ, भोग, उपयोग और वीर्य मे विघ्न उपस्थित हो जाते हैं।

ग्यारहवें बोले गुणस्थान १४ - १. मिथ्यात्व गुणस्थान, २. सास्वादन गुणस्थान ३. सम्यक्-मिथ्या (मिश्र) गुणस्थान ४. अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान ५. देशविरति श्रावक गुणस्थान, ६. प्रमादी साधु गुणस्थान, ७. अप्रमादी साधु गुणस्थान ८. नियट्टि बादर गुणस्थान ९. अनियट्टि बादर गुणस्थान, १०. सूक्ष्म संपराय गुणस्थान ११. उपशांत मोहनीय गुणस्थान १२. क्षीण मोहनीय गुणस्थान १३. सयोगी केवली गुणस्थान १४. अयोगी केवली गुणस्थान

प्रश्न - जीवों की क्रमशः उन्नत अवस्थाओं को जैन शास्त्र में क्या कहते हैं?

उत्तर - गुणस्थान।

प्रश्न - गुणस्थान की परिभाषा क्या है ?

उत्तर - मोह कर्म के क्षय उपशम और क्षयोपशम से तथा योग (मन, वचन और काय की प्रवृत्ति) के निमित्त से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग् चारित्र रूप आत्मा के गुणो मे जो तरतम भाव आता है, उसको गुणस्थान कहते है।

बारहवें बोले पॉच इन्द्रियों के तेईस विषय एवं २४० विकार

श्रोतेन्द्रिय के तीन विषय - जीव शब्द, अजीव शब्द और मिश्र शब्द।

* ये तीन शुभ और ३ अशुभ, इन ६ पर राग और ६ पर द्वेष इस प्रकार १२ विकार।

चक्षुरिन्द्रिय के पॉच विषय - काला, नीला, लाल, पीला और सफेद।

* ये पॉच सचित्त , ५ अचित्त, ५ मिश्र, ये १५ शुभ १५ अशुभ । इन ३० पर राग और ३० पर द्वेष। इस प्रकार ६० विकार।

घ्राणेन्द्रिय के दो विषय - सुरभिगध, दुरभिगंध।

* ये २ सचित्त, २ अचित्त, २ मिश्र इन ६ पर राग और ६ पर द्वेष, इस प्रकार १२ विकार।

रसनेन्द्रिय के पॉच विषय - तीखा, कडवा, कषायला, खट्टा और मीठा।

* ये ५ सचित्त, ५ अचित्त, ५ मिश्र ये १५ शुभ और १५ अशुभ ३० पर राग और ३० पर द्वेष। इस प्रकार ६० विकार।

स्पर्शनेन्द्रिय के आठ विषय - कर्कश (खुरदरा), मृदु (कोमल), लघु (हलका), गुरु (भारी), शीत (ठण्डा), उष्ण (गर्म), रूक्ष (लूखा), स्निग्ध (चिकना) ये ८ सचित, ८ अचित, ८ मिश्र ये २४ शुभ और २४ अशुभ। ४८ पर राग, ४८ पर द्वेष, इस प्रकार ९६ विकार।

प्रश्न - विषय किसे कहते हैं ?

उत्तर - इन्द्रियो के द्वारा जीव जिन शब्द, रूप आदि को ग्रहण करता है, उसे विषय कहते है।

प्रश्न - विकार किसे कहते हैं ?

उत्तर - विषयो पर राग-द्वेष की प्रवृत्ति को विकार कहते हैं।

तेरहवें बोल मिथ्यात्व के १० भेद - १. जीव को अजीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व २. अजीव को जीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व ३. धर्म को अधर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व ४.

अधर्म को धर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व ५. साधु को असाधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ६.असाधु को साधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व ७. संसार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ८. मोक्ष के मार्ग को संसार का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ९. आठ कर्मों से मुक्त को अमुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व १०. आठ कर्मो से अमुक्त को मुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व।

प्रश्न - मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर - मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से जीव, अजीव आदि जो तत्व जैसे है, वैसा नहीं मानना न्यूनाधिक मानना या विपरीत मानना मिथ्यात्व है।

चौदहवें बोले छोटी नवतत्त्व के ११५ भेद

नव तत्वों के नाम - १.जीव तत्व, २. अजीव तत्व, ३. पुण्य तत्व, ४. पाप तत्व ५. आश्रव तत्व, ६. संवर तत्व, ७. निर्जरा तत्व, ८. बंध तत्व, ९. मोक्ष तत्व।

नव तत्वों के भेद - जीव के १४, अजीव के १४, पुण्य ९, पाप के १८, आस्रव के २०, संवर के २०, निर्जरा के १२, बंध के ४, मोक्ष के ४, कुल मिलाकर ११५ भेद हुए।

प्रश्न - तत्व किसे कहते हैं ?

उत्तर - वस्तु के (जीव, अजीव आदि के) वास्तविक स्वरूप को तत्व कहते है।

जीव के १४ भेद

सूक्ष्म एकेन्द्रिय के दो भेद	अपर्याप्त और पर्याप्त
बादर एकेन्द्रिय के दो भेद	अपर्याप्त और पर्याप्त
द्वीन्द्रिय के दो भेद	अपर्याप्त और पर्याप्त
त्रीन्द्रिय के दो भेद	अपर्याप्त और पर्याप्त
चतुरिन्द्रिय के दो भेद	अपर्याप्त और पर्याप्त
असन्नी पंचेन्द्रिय के दो भेद	अपर्याप्त और पर्याप्त
सन्नी पंचेन्द्रिय के दो भेद	अपर्याप्त और पर्याप्त

प्रश्न - जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो द्रव्य प्राण और भाव प्राण को धारण करता है अर्थात् चेतन लक्षण मे

युक्त है उसे जीव कहते हैं।

प्रश्न - सूक्ष्म जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर - सूक्ष्म नाम कर्म के उदय से जो सूक्ष्म पृथ्वी, पानी आदि शरीर धारी जीव है, उनको सूक्ष्म जीव कहते है। ये सारे लोक मे व्याप्त है। उनकी आयु पूर्ण होने पर ही उनकी मृत्यु होती है। उनको कोई किसी भी शस्त्र से नहीं मार सकता। आग उन्हे जला नहीं सकती और न ही पानी गला सकता है। असंख्यात सूक्ष्म पृथ्वी कायिक आदि जीवो के शरीर इकट्ठे हो जाने पर भी छद्मस्थ को दिखाई नहीं देते है। केवलज्ञानी ही इन्हे देख सकते है। सूक्ष्म नाम कर्म का उदय एकेन्द्रिय मे ही होता है।

प्रश्न - बादर एकेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर - बादर नाम कर्म के उदय से जो स्थूल शरीरधारी जीव है, उनको बादर एकेन्द्रिय कहते है। वे सारे लोक मे व्याप्त नहीं है। वे आख से या यत्र की सहायता से देखे जा सकते है। उन पर शस्त्र का प्रभाव पडता है। वे दूसरो के लिये भी अनुकूल प्रतिकूल होते है। पृथ्वी, पानी, वनस्पतिकाय आदि पाचो स्थावरो मे वे होते है। सचित्त मिट्टी, पानी, लीलोतरी आदि के रूप मे जिनका शरीर हम प्रतिदिन देखते है, वे बादर एकेन्द्रिय जीव है। एकेन्द्रिय जीव सूक्ष्म और बादर दोनो ही होते है। किन्तु बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एव पचेन्द्रिय सभी जीव बादर ही होते है।

प्रश्न - पर्याप्त और अपर्याप्त किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस जीव मे जितनी पर्याप्तियॉ कही गई है, उन सभी पर्याप्तियो को पूर्ण कर लेने पर वह जीव पर्याप्त कहलाता है। एकेन्द्रिय जीव को आहार, शरीर इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास ये चार पर्याप्तियॉ होती है। जब जीव इनको पूरा कर लेता है, तब वह पर्याप्त कहलाता है तथा स्व प्रायोग्य पर्याप्तियो को जब तक पूर्ण नहीं कर लेता है तब तक अपर्याप्त कहलाता है। ऐसे ही द्वीन्द्रियादि जीवो मे भी समझना।

प्रश्न - संज्ञी और असंज्ञी किसे कहते है ?

उत्तर - जो मन वाले है, उनको सज्ञी कहते है। मन पचेन्द्रिय जीवो के ही होता है।

जैसे गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यञ्च देवता तथा नारकी जीव। जिन जीवो के मन नहीं होता है उसको असंज्ञी कहते हैं। जैसे एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम मनुष्य एवं बिना गर्भ से उत्पन्न तिर्यच पंचेन्द्रिय के जीव।

अजीव के १४ भेद

धर्मास्तिकाय के तीन भेद - १. स्कंध २. स्कंध का देश और ३. स्कंध का प्रदेश

अधर्मास्तिकाय के तीन भेद - १. स्कंध २. स्कंध का देश और ३. स्कंध का प्रदेश

आकाशास्तिकाय के तीन भेद -१ स्कंध २ स्कंध का देश और ३ स्कंध का प्रदेश और दसवां काल। ये दस भेद अरूपी अजीव के होते हैं। रूपी पुद्गल के चार भेद हैं - (१) स्कंध (२) स्कंध का देश (३) प्रदेश और (४) परमाणु पुद्गल। ये १४ भेद अजीव के होते हैं।

प्रश्न - अजीव किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो सर्वथा चेतना शून्य जड़ हो उसे अजीव कहते हैं।

प्रश्न - धर्मास्तिकाय किसे कहते हैं ?

उत्तर - जीव और पुद्गल जिस द्रव्य की सहायता से हलन-चलन करते हैं, उस द्रव्य का नाम धर्मास्तिकाय है, जैसे मछली के हलन-चलन में पानी सहायक होता है अथवा पटरी रेल के चलने मे सहायक होती है। यह द्रव्य चलने की प्रेरणा नहीं देता है, परन्तु स्वभावतः गति परिणत जीवों और पुद्गलों का सहायक होता है।

प्रश्न - अधर्मास्तिकाय किसे कहते हैं ?

उत्तर - जीव और पुद्गलों की स्थिति मे सहायक द्रव्य का नाम अधर्मास्तिकाय है, जैसे थके हुए पथिक को ठहरने में छाया उपकारक होती है। यह द्रव्य स्थिर होने के लिए विवश नहीं करता, परन्तु स्थिर होते हुए पदार्थ का सहायक हो जाता है।

प्रश्न - आकाशास्तिकाय किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो सब द्रव्यो को जगह (स्थान) देता है उसे आकाशास्तिकाय कहते हैं। जैसे दूध, शक्कर को और पानी नमक को स्थान देता है। इसके दो भेद होते है - लोकाकाश और अलोकाकाश। लोकाकाश मे सभी द्रव्य रहे हुए है जबकि अलोकाकाश में आकाश के सिवाय और कोई द्रव्य नहीं है क्योकि हलन-चलन में सहायक करने वाला धर्मास्तिकाय द्रव्य लोकाकाश तक ही सीमित है।

प्रश्न - आकाशास्तिकाय के कितने भेद हैं ?

उत्तर - आकाश तो अनादि अनंत अखड एक द्रव्य है, लेकिन लोकाकाश (जहॉ सभी द्रव्य रहते है) और अलोकाकाश (सिर्फ आकाश) की अपेक्षा इसके दो भेद है।

प्रश्न - काल द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो द्रव्यो के परिणमने मे सहायक हो अर्थात् नये-पुराने, छोटे-बडे आदि की पहचान जिस द्रव्य से होती है, उसे काल द्रव्य कहते हैं। समय, आवलिका, मुहूर्त, प्रहर, दिन-रात, मास, वर्ष आदि व्यवहार इसी द्रव्य के आधार से किये जाते है।

प्रश्न - काल द्रव्य को अस्तिकाय क्यों नही कहा जाता है ?

उत्तर - जिस द्रव्य के भेद हो सकते हैं, उसे ही अस्तिकाय कहा जाता है। लेकिन काल स्वतंत्र द्रव्य नहीं है, वह परपदार्थ सापेक्ष है यथा सूर्य के चलने से, एवं घडी का कांटा घूमने से काल का ज्ञान होता है। यह अप्रदेशी है इसलिए अस्तिकाय नहीं है।

प्रश्न - अस्तिकाय किसे कहते हैं ?

उत्तर - अस्ति अर्थात् प्रदेश, काय अर्थात् समूह। अर्थात् प्रदेशो के समूह को अस्तिकाय कहते है।

प्रश्न - पुद्गलास्तिकाय किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिसमे वर्ण, गंध, रस, स्पर्श हो जो सडन-गलन स्वभाव वाला हो उसे पुद्गल कहते हैं तथा पुद्गलो के समूह को पुद्गलास्तिकाय कहते हैं। संसार मे हम जिन पदार्थो को देखते है, वे सब पुद्गल हैं। सडना-गलना

बिखरना और एकत्रित होना, ये सब क्रियाएँ पुद्गलों में होती है। जब तक जीव के साथ इसका सम्बन्ध बना रहा है, तब तक इनके साथ सचित्त का व्यवहार किया है। जीव से सम्बन्ध छूटते ही ये अपने असली स्वरूप मे अचित्त रह जाते हैं, जैसे-निर्जीव शरीर। यह द्रव्य संसारी जीवो की प्रवृत्तियो मे विशेष सहायक होता है।

प्रश्न - **प्रदेश किसे कहते हैं ?**

उत्तर - प्रदेश स्कंध का वह सूक्ष्म भाग कहलाता है, जिसके दूसरे भाग की कल्पना भी न की जा सकती हो और स्कंध के साथ अवयव रूप से मिला हुआ हो। अनेक प्रदेश मिल के **देश** कहलाते हैं और अनेक देशों का समूह स्कन्ध कहलाता है। देश भी **स्कन्ध** से मिले हुए ही होते है, स्वतंत्र नहीं रहते।

प्रश्न - **परमाणु किसे कहते हैं ?**

उत्तर - पुद्गल के अति सूक्ष्म भाग को, जिसका फिर हिस्सा न किया जा सके, उसे परमाणु कहते हैं। **परमाणु** और **प्रदेश** में यही अन्तर है कि प्रदेश अपने देश और स्कंध से मिले हुए होते है जबकि परमाणु उससे पृथक होता है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के प्रदेश पृथक नहीं हो सकते है। अतः इन द्रव्यों में परमाणु नहीं कहा गया है। रूपी अजीव द्रव्य में ही परमाणु होते हैं। किन्तु हम ऑख से या किसी यंत्र के सहारे से इसे नहीं देख सकते हैं।

पुण्य के ९ भेद

१. **अन्न पुण्य** - अन्न देने से पुण्य होता है। २. **पान पुण्य** - पानी देने से पुण्य होता है। ३. **लयन पुण्य** - जगह देने से पुण्य होता है। ४. **शयन पुण्य** - शय्या, पाट, पाटला आदि देने से पुण्य होता है। ५. **वस्त्र पुण्य** - वस्त्र देने से पुण्य होता है। ६. **मन पुण्य** - शुभ विचार रखने से पुण्य होता है। ७. **वचन पुण्य** - शुभ वचन बोलने से पुण्य होता है। ८. **काय पुण्य** - शरीर द्वारा सेवा तथा विनय करने से पुण्य होता है। ९. **नमस्कार पुण्य** - गुणवान को नमस्कार करने से पुण्य होता है।

प्रश्न - पुण्य किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो आत्मा को पवित्र करे और जिससे प्राणियों को सुख की प्राप्ति हो, उसे पुण्य कहते है। यह शुभ योगो से बंधता है।

पाप के १८ भेद

१. **प्राणातिपात** - जीवों की हिसा करना। २. **मृषावाद** - झूठ बोलना ३. **अदत्तादान** - चोरी करना। ४. **मैथुन** - कुशील सेवन करना। ५. **परिग्रह** - धन-संग्रह की लालसा करना। ६. **क्रोध** - रोष करना। ७. **मान** - अहंकार करना। ८. **माया** - छल-कपट करना। ९. **लोभ** - लालच, तृष्णा बढ़ाना १०. **राग** - स्नेह, प्रीति करना। ११. **द्वेष** - बैर १२. **कलह** - क्लेश करना १३. **अभ्याख्यान** - झूठा कलंक चढाना १४. **पैशुन्य** - चुगली करना। १५. **पर-परिवाद** - दूसरो की निदा करना। १६. **रति-अरति** - मनोज्ञ वस्तुओं पर प्रसन्न होना और अमनोज्ञ वस्तुओ पर नाराज होना। १७. **माया-मृषावाद** - छल-कपट के साथ झूठ बोलना। १८. **मिथ्यादर्शन शल्य** - कुदेव, कुगुरु और कुधर्म पर श्रद्धा रखना।

प्रश्न - पाप किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो आत्मा को मलिन करे, जो अशुभ योगो से बधे और दुःख पूर्वक भोगा जाए उसे पाप कहते है।

आस्रव के २० भेद

१. **मिथ्यात्व** - जीवादि तत्वो पर विपरित विचार करे तो आस्रव। २. **अव्रत** - प्रत्याख्यान नहीं करे तो आस्रव। ३. **प्रमाद** - पांच प्रमाद का सेवन करे, सो आस्रव। ४. **कषाय** - क्रोध, मान, माया और लोभ का सेवन करे सो आस्रव। ५. **अशुभयोग** - मन, वचन और काया द्वारा अशुभ प्रवृत्तियाँ करे सो आस्रव। ६. **प्राणातिपात** - जीव हिसा करे सो आस्रव। ७. **मृषावाद** - झूठ बोले सो आस्रव । ८. **अदत्तादान** - चोरी करे सो आस्रव। ९. **मैथुन** - कुशील सेवे सो आस्रव। १०. **परिग्रह** - धन सग्रह करे सो आस्रव। ११. **श्रोत्रेन्द्रिय** - वश मे नहीं रखे सो आस्रव। १२. **चक्षुरेन्द्रिय** - वश मे नहीं रखे सो आस्रव। १३. **घ्राणेन्द्रिय** - वश मे नहीं रखे सो आस्रव। १४. **रसनेन्द्रिय** - वश मे नहीं रखे सो आस्रव। १५. **स्पर्शनेन्द्रिय** - वश में नहीं रखे सो

आस्रव। १६. **मन** - वश में नहीं रखे सो आस्रव। १७. **वचन** - वश में नहीं रखे सो आस्रव। १८. **काया** - वश में नहीं रखे सो आस्रव। १९. **भंड** - उपकरण अयतना से लेवे और रखे सो आस्रव। २०. **सुई** - कुशाग्र मात्र कोई भी वस्तु अयतना से लेवे और रखे सो आस्रव।

प्रश्न - आस्रव तत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस क्रिया द्वारा आत्मा में शुभ, अशुभ कर्म आते है उसे आस्रव कहते है। जीव रूपी तालाब में कर्म रूपी पानी आस्रव रूप नालों द्वारा आता है।

संवर के २० भेद

१. **समकित** संवर। २. **व्रत पच्चक्खाण** करे, सो संवर। ३. **प्रमाद** नहीं करे, से संवर। ४. **कषाय** नहीं करे, सो संवर। ५. **शुभयोग** प्रवर्तावे सो संवर। ६. **अप्राणातिपात** - जीव हिंसा न करे, सो संवर। ७. **अमृषावाद** - झूठ नहीं बोले, सो संवर। ८. **अदत्तादानत्याग** - चोरी नहीं करे, सो संवर। ९. **अमैथुन** - कुशील नहीं सेवे, सो संवर। १०. **अपरिग्रह** - मूर्च्छा संग्रह नहीं रखे, सो संवर। ११. **श्रोत्रेन्द्रिय** - वश में करें, सो संवर। १२. **चक्षुरिन्द्रिय** - वश में करें, सो संवर। १३. **घ्राणेन्द्रिय** - वश में करें, सो संवर। १४. **रसनेन्द्रिय** - वश में करें, सो संवर। १५. **स्पर्शनेन्द्रिय**- वश में करें, सो संवर। १६. **मन** - वश में करें, सो संवर। १७. **वचन** - वश में करे, सो संवर। १८. **काया** - वश में करे, सो संवर। १९. **भंड** - उपकरण यतना से लेवे और रखे, सो संवर। २०. **सुई** - कुशाग्र मात्र यतना से लेवे और यतना से रखे सो, संवर।

प्रश्न - संवर किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस क्रिया द्वारा आत्मा में शुभ-अशुभ कर्मो का आना रुकता है, उसे संवर कहते हैं। जीव रूपी तालाब में आस्रव रूप नालों द्वारा आता हुआ कर्म रूपी पानी सम्यक्त्व, व्रत, प्रत्याख्यानादि द्वारा रुकता है।

निर्जरा के १२ भेद

१. **अनशन** (उपवास करना) २.**ऊनोदरी** (कम खाना), ३.**भिक्षाचर्या** (साधुवृत्ति के अनुसार भिक्षा मांगना) ४. **रस-परित्याग** (घृतादि का त्याग), ५. **कायक्लेश**

(आसनादि लगाना) ६. **प्रतिसंलीनता** (इन्द्रियो को वश मे करना) ७. **प्रायश्चित** (दण्ड लेना) ८. **विनय** (विनय करना) ९. **वैयावृत्य** (सेवा करना) १०. **स्वाध्याय** (पढाना-पढना) ११. **ध्यान** (योगाभ्यास करना) १२. **कायोत्सर्ग** (काया को ध्यान मे स्थिर रखना)

प्रश्न - निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर - आत्मा पर लगे हुए कर्मो का आंशिक रूप से नष्ट होना निर्जरा है। उपवासादि १२ प्रकार के तप से कर्मो की निर्जरा होती है जिससे आत्मा निर्मल वन कर सिद्धि को प्राप्त कर लेती है। निर्जरा के दो भेद- सकाम और अकाम। सकाम निर्जरा ही मुक्ति को प्राप्त करने मे सहायक वनती है।

बंध के ४ भेद

१. प्रकृति बंध २. स्थिति बंध ३. अनुभाग बंध ४. प्रदेश बंध

प्रश्न - बंध तत्व किसे कहते हैं ?

उत्तर - कषाय व योग के कारण आत्मा के साथ कर्म पुद्गलो के मिलने को वध कहते है। जैसे- दूध और पानी, लोहपिण्ड और अग्नि एकमेक हो जाते है, वैसे ही आत्मप्रदेश और कर्म पुद्गल एकमेक हो कर बधे उसे वंध कहते है। आठ कर्मो के स्वभाव को **प्रकृति बंध** कहते है। आठ कर्मो के काल परिमाण को **स्थिति बंध** कहते है। आठ कर्मो के तीव्र मंदादि रस को **अनुभाग बंध** कहते है। कर्म पुद्गलो के दल का आत्मा के साथ वध होना **प्रदेश बंध** कहलाता है।

प्रकृति बंध और **प्रदेश बंध** का कारण योग है तथा **स्थिति बंध** ओर **अनुभाग बंध** का कारण कषाय ।

मोक्ष के ४ भेद

१. सम्यक् दर्शन २. सम्यक् ज्ञान ३. सम्यक् चारित्र और ४. सम्यक् तप।

सम्यक् दर्शन - जिनेश्वर भगवान के वचनो पर शुद्ध श्रद्धा रखना।

सम्यक् ज्ञान - श्रद्धापूर्वक सच्चे ज्ञान को सम्यक् ज्ञान कहते हैं।

सम्यक् चारित्र- दर्शन और ज्ञान पूर्वक सत् आचरण करना।

सम्यक् तप - आत्मशुद्धि के लिए विशिष्ट अनुष्ठान करना।

प्रश्न - मोक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर - जब आत्मा सर्वथा कर्म रहित होकर जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाती है उसे मोक्ष कहा जाता है। मोक्ष दशा में न शरीर रहता है और न शरीर मे काम आने वाले संसारी भोग ही रहते है। उस समय यही जीव आत्मा परमात्मा बन जाता है। निर्जरा में कर्मो का नाश अधूरा रहता है, जबकि मोक्ष में कर्मो का पूर्णतया नाश हो जाता है। यही इन दोनों में भेद है।

पन्द्रहवें बोले आत्मा ८

१.द्रव्य आत्मा २.कषाय आत्मा ३.योग आत्मा ४.उपयोग आत्मा ५.ज्ञान आत्मा ६.दर्शन आत्मा ७.चारित्र आत्मा ८.वीर्य आत्मा

१. **द्रव्य आत्मा** - त्रिकालवर्ती, असंख्य प्रदेशी, द्रव्य रूप आत्मा।

२. **कषाय आत्मा** - क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषाय युक्त आत्मा।

३. **योग आत्मा** - मन, वचन और काया रूप योग युक्त आत्मा।

४. **उपयोग आत्मा** - पांच ज्ञान, तीन अज्ञान और चार दर्शन रूप उपयोग युक्त विशिष्ट आत्मा।

५. **ज्ञान आत्मा** - मतिज्ञानादि (साकारोपयोग) रूप ज्ञान युक्त आत्मा।

६. **दर्शन आत्मा** - चक्षुदर्शनादि (निराकारोपयोग) रूप दर्शन युक्त आत्मा।

७. **चारित्र आत्मा** - सामायिक चारित्र आदि रूप चारित्र विशिष्ट आत्मा।

८. **वीर्य आत्मा** - उत्थान रूप वीर्य युक्त आत्मा।

प्रश्न - आत्मा किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो ज्ञानादि पर्यायो में निरन्तर गमन करे उसे आत्मा कहते हैं।

सोलहवें बोले दण्डक २४

सात नारकी का एक दंडक। सात नारकी के नाम धम्मा, वंशा, शीला,

अंजणा, रिट्ठा, मघा और माघवई।

इनके गोत्र-रत्न-प्रभा, शर्करा-प्रभा, बालुका-प्रभा, पंक-प्रभा, धूम-प्रभा, तमः-प्रभा और तमस्तमः-प्रभा।

दस भवनपतियों के दस दंडक उनके नाम - १.असुरकुमार २.नागकुमार ३. सुवर्णकुमार, ४. विद्युतकुमार, ५. अग्निकुमार, ६. द्वीपकुमार, ७. उदधिकुमार ८. दिशाकुमार, ९ पवनकुमार, १०. स्तनितकुमार।

पांच स्थावरों के पांच दण्डक। पांच स्थावरो के नाम पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय।

तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक- तीन विकलेन्द्रियो के नाम - द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय का एक दण्डक, मनुष्य का एक दण्डक, वाणव्यन्तर देवता का एक दण्डक, ज्योतिषी देवता का एक दण्डक, वैमानिक देवता का एक दण्डक। ये सब चौबीस दण्डक हुए। (१+१०+५+३+१+१+१+१+१ = २४)।

प्रश्न - दण्डक किसे कहते हैं ?

उत्तर - अपने किये गये कर्मो का जहाॅ दण्ड भोगा जाता है, वे स्थान दण्डक कहे जाते है।

प्रश्न - विकलेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिन त्रस जीवो को पॉचो इन्द्रियॉ पूरी न मिली हो। जैसे वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय। कहीं-कहीं एकेन्द्रिय को भी विकलेन्द्रिय माना गया है।

प्रश्न - तिर्यच पंचेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर - तिर्यच गति वाले ऐसे जीव, जिन्हे पॉचो इन्द्रियॉ पूरी मिली हो। जैसे मछली, पशु, पक्षी, सर्प, नेवला आदि।

सत्रहवें बोले लेश्या ६

१. कृष्ण लेश्या २. नील लेश्या ३. कापोत लेश्या ४. तेजो लेश्या, ५.पद्म लेश्या, ६. शुक्ल लेश्या।

प्रश्न - लेश्या किसे कहते हैं ?

उत्तर - आत्मा के शुभाशुभ परिणामों को लेश्या कहते है।

छह लेश्या का दृष्टान्त

यदि जामुन के वृक्ष पर फल लगे हुए हों और उनको खाने की इच्छा हो तो कृष्ण लेश्या वाला वृक्ष की जड़ काटकर फल खाना चाहेगा। नील लेश्या वाला बडी-बडी शाखायें काटकर फल खाना चाहेगा, कापोत लेश्या वाला छोटी-छोटी शाखाएँ काटकर फल खाना चाहेगा। तेजोलेश्या वाला फलों के गुच्छे तोडकर फल खाना चाहेगा। पद्म लेश्या वाला सिर्फ पके हुए फलों को तोड़कर खाना चाहेगा। शुक्ल लेश्या वाला धरती पर पडे हुए फल खाकर ही संतोष कर लेगा।

इन छह लेश्याओं में पहले की तीन अशुभ और अधर्म लेश्याएँ हैं। इन लेश्याओं मे अशुभ गति का बंध पडता है। शेष तीन लेश्याये शुभ व धर्म-लेश्याये हैं। इन लेश्याओ मे शुभ गति का बंध पड़ता है।

अठारहवें बोले दृष्टि ३

१. सम्यक् दृष्टि २. मिथ्या दृष्टि ३. सम्यक्-मिथ्या दृष्टि।

प्रश्न - दृष्टि किसे कहते हैं ?

उत्तर - यद्यपि दृष्टि शब्द का अर्थ नेत्र ज्योति या देखने की शक्ति होता है, परन्तु प्रस्तुत प्रकरण में दृष्टि का अर्थ मान्यता या सिद्धान्त है। देव, गुरु धर्म एवं जीवादि तत्व विषयक श्रद्धाविशेष को दृष्टि कहते हैं।

सम्यक् दृष्टि - वीतराग देव की वाणी पर अखण्ड श्रद्धा रखने वाला।

मिथ्या दृष्टि - वीतराग वाणी को देशत: या सर्वत: मिथ्या मानता है।

सम्यक्-मिथ्या दृष्टि - वीतराग वाणी के प्रति न रुचि हो न अरुचि हो।

उन्नीसवें बोले ध्यान ४

१. आर्तध्यान २. रौद्र ध्यान ३. धर्म ध्यान और ४. शुक्ल ध्यान

प्रश्न - ध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर - एक वस्तु या विषय पर मन को स्थिर करना। पहले के दोनों ध्यान अशुभ हैं और शेष दोनों शुभ हैं।

बीसवें बोले षट्द्रव्यों के ३० भेद

षट् द्रव्य के नाम :- १.धर्मास्तिकाय २.अधर्मास्तिकाय ३.आकाशास्तिकाय ४.काल द्रव्य ५. जीवास्तिकाय ६.पुद्गलास्तिकाय। सभी को ५ बोलों से जाना जाता है।

१. धर्मास्तिकाय के ५ भेद

धर्मास्तिकाय को पाँच बोलों से जाना जाता है- १. द्रव्य से एक द्रव्य २. क्षेत्र से- सम्पूर्ण लोक प्रमाण ३. **काल** से-आदि अंत रहित ४. भाव से-वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रहित, अर्थात् अरूपी ,अजीव, शाश्वत, लोकव्यापी और असंख्यात प्रदेशी है ५. गुण से - चलन गुण। पानी मे मछली का दृष्टांत। जैसे पानी के आधार से मछली चलती है वैसे ही जीव और पुद्गल दोनो धर्मास्तिकाय के आधार से चलते है

२. अधर्मास्तिकाय के ५ भेद

अधर्मास्तिकाय को ५ बोलो से जाना जाता है। १. द्रव्य से - एक द्रव्य २. क्षेत्र से - सम्पूर्ण लोक प्रमाण। **३. काल से** - आदि अंत रहित। ४. भाव से - वर्ण नहीं, गध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोकव्यापी और असंख्यात प्रदेशी है। **५. गुण से** - स्थिर गुण थके हुए पथिक को छाया का दृष्टांत। जैसे थके हुए पथिक को छाया का आधार है, उसी तरह ठहरे हुए जीव और पुद्गल को अधर्मास्तिकाय का आधार है।

३. आकाशास्तिकाय के ५ भेद

आकाशास्तिकाय को ५ बोलो से जाना जाता है। १ द्रव्य से - एक द्रव्य २ क्षेत्र से- लोकालोक प्रमाण। **३.काल से** - आदि अंत रहित। ४ भाव से - [illegible], गंध रस और स्पर्श रहित। अरूपी, अजीव, शाश्वत, [illegible]

५ गुण से - स्थान देने का गुण। भींत से खुँटी का दृष्टांत। जैसे खुँटी को भींत स्थान देने में सहायक है। वैसे ही धर्मास्तिकायादि पॉच द्रव्यों को आकाशस्तिकाय स्थान देने मे सहायक है।

४. काल के ५ भेद

काल द्रव्य को पॉच बोलों से जाना जाता है। १. द्रव्य से - अनन्त द्रव्य। २. क्षेत्र से - अढाई द्वीप प्रमाण। ३. काल से - आदि अंत रहित। ४. भाव से - वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रहित। अरूपी , अजीव, शाश्वत और अप्रदेशी हैं। ५. गुण से - वर्तन गुण। नये को पुराना और पुराने का नष्ट करें। कपडे को कैंची का दृष्टांत। प्रदेश रहित होने से काल अस्तिकाय नहीं है।

५. जीवास्तिकाय के ५ गुण

जीवास्तिकाय को ५ बोलों से जाना जाता है। १. द्रव्य से - अनन्त जीव द्रव्य। २. क्षेत्र से - सम्पूर्ण लोक प्रमाण । ३. काल से - आदि अंत रहित। ४. भाव से - वर्ण, गंध,रस और स्पर्श रहित। अरूपी शाश्वत, लोकव्यापी और अनन्त प्रदेशी हैं। एक जीव अपेक्षा असंख्यात प्रदेशी हैं। ५. गुण से-उपयोग गुण। चन्द्रमा की कला का दृष्टांत। जैसे आवरण के कारण चन्द्रमा न्यूनाधिक प्रकाशित है। वैसे ही ज्ञानावरणीयादि के कारण आत्मा का उपयोग गुण न्यूनाधिक प्रकट होता है।

६. पुद्गलास्तिकाय के ५ भेद

पुद्गलास्तिकाय को ५ बोलों से जाना जाता है। १. द्रव्य से- अनन्त द्रव्य। २. क्षेत्र से- सम्पूर्ण लोक प्रमाण। ३. काल से - आदि अंत रहित। ४. भाव से - रूपी अर्थात् वर्ण, गंध, रस और स्पर्श युक्त। अजीव, शाश्वत एवं अनन्त प्रदेशी हे। ५. गुण से - पूरण, गलन, सडन और विध्वंसन गुण। वादल का दृप्टांत। बादल की तरह पुद्गल भी मिलते और विखरते हैं।

प्रश्न - द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर - भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल मे रहने वाला गुण और पर्यायो का जो आधार होता है, उसे द्रव्य कहते है।

प्रश्न - लोक किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिसमे धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य हो उसे लोक कहते हैं।

प्रश्न - अलोक किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिसमें आकाश के सिवाय अन्य द्रव्य का अस्तित्व न हो उसे अलोक कहते है।

प्रश्न - गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो द्रव्य के आश्रित हो, द्रव्य के सब अंशो मे हर समय हो उसे गुण कहते है।

इक्कीसवें बोले राशि २

१. जीव राशि २. अजीव राशि

प्रश्न - राशि किसे कहते हैं ?

उत्तर - समूह, वर्ग या ढेर को राशि कहते है। जीव राशि के ५६३ भेद और अजीव राशि के ५६० भेद होते है।

बाईसवें बोले श्रावकजी के १२ व्रत

१. **पहले अहिंसा व्रत** में श्रावकजी निरपराधी त्रस जीवो को सकल्पपूर्वक मारे नहीं, मरावे नहीं, मन, वचन और काया से। त्रस जीवो को मारने का त्याग करे, स्थावर की मर्यादा करे।

२. **दूसरे सत्यव्रत** मे श्रावकजी-मोटा (स्थूल) झूठ बोले नहीं, वोलावे नहीं, मन वचन और काया से।

३. **तीसरे अचौर्य व्रत** मे श्रावकजी मोटी चोरी करे नहीं, करावे नहीं, मन. वचन और काया से।

४. **चौथे परदार-विवर्जन एवं स्वदार-संतोष व्रत** मे श्रावकजी पर-स्त्री का सेवन का त्याग करे और अपनी स्त्री मे मर्यादा करें।

५. **पांचवॉ परिग्रह परिमाण व्रत** में श्रावकजी परिग्रह की मर्यादा करें।

६. **छठे, दिशा परिमाण व्रत** में श्रावकजी छहो पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊँची-नीची दिशाओं की मर्यादा करें।

७. **सातवें उपभोग, परिभोग, परिमाण, व्रत** में श्रावकजी २६ बोल की मर्यादा करे और पन्द्रह कर्मादान का त्याग करें।

८. **आठवें व्रत अनर्थ-दण्ड विरमण व्रत** में श्रावकजी चार प्रकार के अनर्थ - दण्ड का त्याग करें।

९. **नौवें सामायिक व्रत** में श्रावकजी प्रतिदिन शुद्ध सामायिक करें।

१०. **दसवें देशावकाशिक व्रत** में श्रावकजी देशावकाशिक पौषध करें। दया करे, संवर करें, चौदह नियम चितारें।

११. **ग्यारहवें पौषधोपवास व्रत** में श्रावकजी प्रतिपूर्ण पौषध करें।

१२. **बारहवें अतिथि संविभाग व्रत** में श्रावकजी प्रतिदिन चौदह प्रकार की वस्तुओ में से जो निर्दोष हों, देवें।

तेइसवें बोले साधुजी के पांच महाव्रत

१. अहिंसा महाव्रत - पहले महाव्रत में साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से जीव हिसा करे नहीं। करावें नहीं और करते हुए को भला जाने नहीं मन-वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से)

२. सत्य महाव्रत - दूसरे महाव्रत में साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से झूठ बोले नहीं, बोलावे नहीं, बोलते हुए को भला जाने नहीं, मन, वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से)

३. अचौर्य महाव्रत - तीसरे महाव्रत में साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से चोरी करे नहीं, करावे नहीं, करते हुए को भला जाने नहीं, मन, वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से)

४. ब्रह्मचर्य महाव्रत - चौथे महाव्रत में साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से मैथुन सेवे नहीं, सेवावे नहीं, सेवते हुए को भला जाने नहीं , मन, वचन और काया से (तीन

करण, तीन योग से)

५. **अपरिग्रह महाव्रत** - पांचवे महाव्रत मे साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से परिग्रह रखे नहीं, रखावे नहीं, रखते हुए को भला जाने नहीं, मन, वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से)

प्रश्न - व्रत और महाव्रत में क्या अन्तर है।

उत्तर - गृहस्थ जीवन की मर्यादा में रहकर अपनी शक्ति के अनुसार अहिसादि बारह अणुव्रतो का पालन व्रत कहलाता है। घर-बार को छोडकर सर्वथा निर्दोष रूप से अहिंसादि व्रतो का पूर्ण पालन करना महाव्रत कहलाता है। श्रावक अणुव्रती कहलाता है और पंच महाव्रतधारी साधु या साध्वी महाव्रती कहलाते है। संक्षेप मे कहा जाय तो दोषो की पूर्ण निवृत्ति को महाव्रत कहते है और आशिक निवृत्ति को अणुव्रत या देश विरति कहते हैं।

चौबीसवें बोले भांगा ४९ का जाणपणा

नौ अंक ११, १२, १३, २१, २२, २३, ३१, ३२, ३३, इसमें प्रथम अंक 'करण' और दूसरा अंक 'योग' रूप है।

११ अंक ग्यारह का भंग उपजे नौ। एक करण एक योग से कहना।

१. करूंगा नहीं मन से , २. करूंगा नहीं वचन से, ३. करूंगा नहीं काया से, ४.कराऊंगा नहीं मन से। ५. कराऊंगा नहीं वचन से ६. कराऊंगा नहीं काया से, ७.अनुमोदना दूंगा नहीं मन से, ८. अनुमोदना दूंगा नहीं वचन से, ९. अनुमोदना दूगा नहीं काया से।

१२ अंक बारह का भंग उपजे नौ। एक करण दो योग से कहना।

१. करुंगा नहीं-मन से, वचन से।

२. करुगा नहीं - मन से, काया से।

३. करुंगा नहीं - वचन से, काया से।

४. कराऊंगा नहीं - मन से वचन से।

५. कराऊंगा नहीं- मन से, काया से।

६. कराऊंगा नहीं - वचन से, काया से।

७. अनुमोदूंगा नहीं - मन से वचन से।

८. अनुमोदूंगा नहीं- मन से, काया से।

९. अनुमोदूंगा नहीं - वचन से, काया से।

१३ अंक तेरह का भंग उपजे तीन। एक करण तीन योग से कहना।

१. करुंगा नहीं - मन से, वचन से काया से।

२. कराऊंगा नहीं - मन से, वचन से, काया से।

३. अनुमोदूंगा नहीं - मन से, वचन से, काया से।

२१ अंक इक्कीस का भंग उपजे नौ। दो करण एक योग से कहना।

१. करुंगा नहीं, कराऊंगा नहीं - मन से।

२. करुंगा नहीं, कराऊंगा नहीं - वचन से।

३. करुंगा नहीं, कराऊंगा नहीं - काया से।

४. करुंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं - मन से।

५. करुंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं - वचन से।

६. करुंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं - काया से।

७. कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं - मन से।

८. कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं - वचन से।

९. कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं - काया से।

२२ अंक बाईस का भंग उपजे नौ। दो करण, दो योग से कहना।

१. करुंगा नहीं, कराऊंगा नहीं- मन से, वचन से।

२. करुंगा नहीं, कराऊंगा नहीं- मन से, काया से।

३. करुंगा नहीं, कराऊंगा नहीं- वचन से, काया से।

४. करुंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं- मन से, वचन से।

५. करुंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं- मन से, काया से।

६. करुंगा नहीं. अनुमोदूंगा नहीं- वचन से, काया से।

७. कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं- मन से, वचन से।

८. कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं- मन से, काया से।

९. कराऊंगा नही, अनुमोदूंगा नहीं- वचन से, काया से।

२३ अंक तेईस का भंग उपजे तीन। दो करण तीन योग से कहना।

१. करुंगा नहीं, कराऊंगा नहीं-मन से, वचन से, काया से।

२. करुंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं-मन से, वचन से, काया से।

३. कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं-मन से, वचन से, काया से ।

३१ अंक इकतीस का भंग उपजे तीन, तीन करण एक योग से कहना।

१. करुंगा नहीं, कराऊगा नहीं-अनुमोदूंगा नहीं मन से।

२. करुंगा नहीं, कराऊगा नहीं-अनुमोदूंगा नहीं वचन से।

३. करुंगा नहीं, कराऊंगा नहीं-अनुमोदूंगा नहीं काया से।

२२ अंक बत्तीस का भंग उपजे तीन। तीन करण दो योग से कहना।

१. करुंगा नहीं, कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं-मन से, वचन से।

२. करुंगा नहीं, कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं-मन से, काया से।

३. करुगा नहीं, कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं-वचन से, काया से।

३३ अंक तैतीस का भंग उपजे एक। तीन करण तीन योग से कहना।

१. करुंगा नहीं, कराऊंगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं-मन से, वचन से, काया से।

यंत्र

आंक	११	१२	१३	२१	२२	२३	३१	३२	३३	आंक
करण	१	१	१	२	२	२	३	३	३	
योग	१	२	३	१	२	३	१	२	३	
भांगा	९	९	३	९	९	३	३	३	१	४९

भांगे - ४९

प्रश्न - भंग किसे कहते हैं ?

उत्तर - श्रावक के प्रत्याख्यान करने के विकल्प को भंग कहते हैं।

पच्चीसवें बोले चारित्र ५

१. सामायिक चारित्र २. छेदोपस्थापनीय चारित्र, ३. परिहार विशुद्ध चारित्र, ४. सूक्ष्म सम्पराय चारित्र, ५. यथाख्यात चारित्र।

प्रश्न - चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर - सर्व सावद्य योग से निवृत्ति को चारित्र कहते हैं।

२. १२ चक्रवर्ती

चक्रवर्ती उन्हें कहते हैं जो सम्पूर्ण छह खण्ड पृथ्वी को जीतकर राज्य करे और चौदह रत्न तथा नवनिधि के स्वामी हो। उनके नाम इस प्रकार हैं।

१. भरतजी	२. सगरजी	३. मघवाजी
४. सनत्कुमारजी	५. शांतिनाथजी	६.कुन्थुनाथजी
७. अरनाथजी	८. सुभूमजी	९. महापद्मजी
१०. हरिषेणजी	११. जयसेनजी	१२. ब्रह्मदत्तजी

पांचवें, छठे और सातवें चक्रवर्ती ही सोलहवें, सत्तरहवें और अट्ठारहवें तीर्थंकर हुए हैं।

नव बलदेव, नव वासुदेव और नव प्रतिवासुदेव

बलदेव एवं वासुदेव दोनों भाई होते हैं। वासुदेव, प्रतिवासुदेव को मारकर तीन खण्ड पृथ्वी के स्वामी बनते हैं। वासुदेव की मृत्यु के बाद बलदेव भी मुनि बन जाते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं।

३. नव बलदेव के नाम

१. अचलजी	२.विजयजी	३.भद्रजी
४. सुप्रभजी	५. सुदर्शनजी	६.आनन्दजी
७. नन्दनजी	८. रामचन्द्रजी	९. बलभद्रजी

४. नव वासुदेव के नाम

१ त्रिपृष्टजी	२. द्विपृष्टजी	३. स्वयंभूजी
४. पुरुषोत्तमजी	५. पुरुषसिहजी	६. पुरुषपुण्डरीकजी
७. दत्तजी	८. लक्ष्मणजी	९. कृष्णजी

५. नव प्रतिवासुदेव के नाम

१. अश्वग्रीवजी	२. तारकजी	३. मेरकजी
४. मधुकीटजी	५. निष्कुंभजी	६.बलिजी
७. प्रहलादजी	८. रावणजी	९. जरासंधजी

--**--

६. छः काय का थोकड़ा

सूत्र श्री पन्नवणा के छठे पद में छः काय का थोकडा चलता है जिसके द्वार आठ है :-

१. नाम द्वार	२. गौत्र द्वार	३. वर्ण द्वार
४. स्वभाव द्वार	५. संठाण द्वार	६. कुलकोडी द्वार
७. जन्म-मरण द्वार	८. अल्प बहुत्व द्वार	

नाम द्वार

१. इन्दे थावरकाय	२. बम्भे थावरकाय	३. सिप्पे थावरकाय
४. सुंमति थावरकाय	५. पायावच्चे थावरकाय	६. जंगमकाय

गौत्र द्वार

१. पृथ्वीकाय	२. अप्काय	३. तेउकाय
४. वायुकाय	५. वनस्पतिकाय	६. त्रसकाय

वर्ण द्वार

१. पृथ्वीकाय का वर्ण पीला	२. अपूकाय का लाल
३. तेऊकाय का सफेद	४. वायुकाय का नीला
५. वनस्पतिकाय का काला	६. त्रस काय का नाना प्रकार

स्वभाव द्वार

१. पृथ्वीकाय का स्वभाव कठोर। २. अपकाय का स्वभाव ढीला

३. तेउकाय का स्वभाव उष्ण ४. वायुकाय का स्वभाव वाजना (चंचल)

५-६. वनस्पतिकाय एवं त्रस काय का स्वभाव अनेक प्रकार का।

संठाण द्वार

१. पृथ्वीकाय का संठाण चन्द्रमा या मसूर की दाल के समान।

२. अप्काय का संठाण पानी के बुलबुले के समान।

३. तेउकाय का संठाण सुई के भारे के समान।

४. वायुकाय का संठाण ध्वजा-पताका के समान।

५-६. वनस्पतिकाय काय एवं त्रस काय का संठाण अनेक प्रकार का।

कुल कोड़ी द्वार

पृथ्वीकाय की १२ लाख, अप्काय की ७ लाख, तेउकाय की ३ लाख, वायुकाय की ७ लाख, वनस्पतिकाय की २८ लाख, बेइन्द्रिय की ७ लाख, तेइन्द्रिय की ८ लाख, चउरिन्द्रिय की ९ लाख, जलचर की १२॥ लाख, थलचर की १० लाख, खेचर की १२ लाख, उपररिसर्प की १० लाख, भुजपरिसर्प की ९ लाख, नारकी की २५ लाख, देवता की २६ लाख, मनुष्यों की १२ लाख, कुल कोडी (जीवों के अनेक प्रकारों को) एक करोड साढे सत्याणवे लाख।

जन्म-मरण द्वार

अहो भगवन्! चार स्थावर के जीव एक मुहूर्त में कितने वार जन्म-मरण करते है?

जघन्य एक उत्कृष्ट १२,८२४ बार जन्म मरण करते हैं।

वनस्पति के तीन भेद - १. सूक्ष्म, २. साधारण ३. प्रत्येक

इन सबके जन्म-मरण जघन्य १, उत्कृष्ट सूक्ष्म वनस्पति के ६५,५३६, साधारण वनस्पति के ३२,०००, प्रत्येक वनस्पति के जीव १६,००० जन्म मरण करे, बेइन्द्रिय के ८०, तेइन्द्रिय के ६०, चौरिन्द्रिय के ४०, असन्नी पंचेन्द्रिय के २४, एवं सन्नी पंचेन्द्रिय जघन्य उत्कृष्ट १।

अल्प-बहुत्व द्वार

सबसे कम त्रस काय इससे तेउ काय असं. गुणा, इससे पृथ्वीकाय विशेषाधिक, इससे अप्काय विशेषाधिक, इससे वायुकाय विशेषाधिक, इससे सिद्ध भ. अनन्त गुणा, इससे वनस्पति काय अनंतगुणा।

छः काय परिशिष्ट

१. **पृथ्वीकाय** - एक चने जितनी मिट्टी मे भगवान ने असंख्यात जीव वताए है। वे सभी जीव निकल कर कबूतर-कबूतर जितना शरीर बनावे, तो एक लाख योजन के इस जम्बूद्वीप मे नहीं समाए।

२. **अप्काय** - एक पानी की बूंद मे भगवान ने असख्य जीव वताए है। वो सभी जीव वहाँ से निकलकर भौरे-भौरे जितना शरीर वनाए तो एक लाख योजन के इस जम्बुद्वीप मे नहीं समाए।
(नोट - आधुनिक वैज्ञानिक स्कोई बीन ने भी पानी की एक बूंद में माइक्रोस्कोप से ३६,४५० जीव चलते फिरते देखे हैं, जिसका फोटो भी प्रकाशित किया।)

३. **तेऊकाय** - एक अग्नि की चिनगारी मे भगवान ने असंख्य जीव वताए है। वे सभी जीव निकलकर सरसो-सरसो जितना शरीर बनाए तो एक लाख योजन के इस जम्बूद्वीप मे नहीं समाए।

४. **वायुकाय** - चुटकी बजाने से, खुले मुंह बोलने से, पखा चलाने से, कपडा झटकने से, ताली बजाने से आदि क्रियाओ मे कृत्रिम अचित्तवायु उत्पन्न होती है। इससे प्राकृतिक सचित्त वायुकाय के जीवो की हिसा होती है। एक चुटकी वायु मे भगवान ने असख्य जीव वताए है। वे सभी जीव निकलकर खसखस-खसखस (पोस्तदाना) जितना शरीर वनाए तो एक लाख योजन के इस जम्बूद्वीप मे नहीं समाए।

५. **वनस्पतिकाय** - जमीकन्द (आलू, प्याज) आदि वनस्पति का टुकडा, जो मात्रा मे सुई की नोक पर ठहर सके, उसमे असंख्यात प्रतर हैं। एक-एक प्रतर मे असंख्य श्रेणी है, एक-एक श्रेणी मे असंख्य

गोले हैं। एक-एक गोले में असंख्य शरीर हैं। तथा एक शरीर में अनन्त जीव हैं।

भव्यात्माओं ! प्रभु ने वनस्पति २४ लाख प्रकार की बताई है। उन सभी का हम त्याग नहीं कर सकते फिर भी यदि १००-२०० आदि प्रमाण मे खुली रखकर बाकी वनस्पति का त्याग करते हैं तो भी लाखों प्रकार की वनस्पति के अनंत जीवो की दया पालकर हम अपनी तरफ से उन्हें अभयदान दे सकते है। अत: आप वनस्पति की मर्यादा (सौगन्ध) करे व अन्य जीवो को भी इस त्याग की प्रेरणा दे।

६. त्रसकाय - त्रसकाय मे सभी हलते-चलते जीव हैं। जो संख्यात् असंख्यात होते हैं।

ऐसा जानकर जो भवि आत्मा उपर्युक्त छ: काय की जीवदया पालेगा, उसका परम कल्याण होगा।

***

१. भगवान पार्श्वनाथ

जन्म - इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र मे गंगा महानदी के निकट "वाराणसी" नामक भव्य नगरी थी। वहाँ इक्ष्वाकु वंशीय महाराजा अश्वसेन का राज्य था। वे महाप्रतापी सौभाग्यशाली और धर्मपरायण थे। "वामादेवी" उनकी पटरानी थी। वह सुन्दर, सुशील और उत्तम गुणो की स्वामिनी थी। पति की वह प्राणवल्लभा थी। नम्रता, सौजन्यता और पवित्रता की वह प्रतिमा थी। सुवर्णबाहु का जीव प्राणत स्वर्ग से च्यव कर चैत्र-कृष्णा-चौथ की अर्द्धरात्रि को विशाखा-नक्षत्र मे महारानी वामादेवी की कुक्षी मे उत्पन्न हुआ। रानी वामादेवी ने तीर्थकर के जन्म के सूचक चौदह महास्वप्न देखे। महाराजा व महारानी के हर्ष का पार नहीं रहा। स्वप्न पाठको से स्वप्न फल पूछा। तीर्थकर जैसे त्रिलोकपूज्य होने वाले महान् आत्मा के आगमन की प्रतीति से वे परम प्रसन्न हुए। पौष कृष्णा दसमी की रात्रि को विशाखा नक्षत्र मे पुत्र का जन्म हुआ। नीलोत्पल वर्ण और सर्प के चिह्न वाला वह पुत्र अत्यन्त शोभनीय था। छप्पन दिशाकुमारियो ने सुतिका कर्म किया। देव-देवियों और इन्द्र-इन्द्राणियो ने जन्मोत्सव मनाया। महाराज अश्वसेनजी ने भी वडे हर्ष के साथ पुत्र का जन्मोत्सव मनाया। जब पुत्र गर्भ मे था, तव रात के अंधकार मे महारानी ने पति के पार्श्व (बगल मे) मे होकर जाते हुए एक सर्प को देखा था। इस स्वप्न को गर्भ का प्रभाव मान कर माता-पिता ने पुत्र का "पार्श्व"नाम दिया। कुमार दूज के चन्द्रमा के समान बढने लगे। यौवनवय प्राप्त होने पर वे भव्य अत्यात्कर्षक और नो हाथ प्रमाण ऊँचे थे। उनके अलौकिक रूप को देखकर स्त्रियॉ सोचतीं- 'वह स्त्री परम सौभाग्यवती होगी जिसके पति ये राजकुमार होगे।'

अद्भुत पराक्रम एवं विवाह - कन्नौज (कुश स्थल) नामक नगर मे नरवर्मा नामक राजा राज्य करते थे। उनका धर्म के प्रति अनन्य अनुराग था। उन्होंने अपने प्रतापी पुत्र प्रसेनजित को राज्यभार सौप कर निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या अगीकार कर ली। राजा प्रसेनजित की प्रभावती नाम की पुत्री थी। वह रूप एव लावण्य मे देवागना मे भी अधिक सुन्दर थी। उसके रूप पर अनेक राजा एव राजकुमार आसक्त थे। राजकुमारी प्रभावती ने किन्नरियों द्वारा पार्श्वकुमार के गुण, रूप सौन्दर्य एवं वल पराक्रम का वृतान्त सुना तभी से वह

पार्श्वकुमार के प्रति अनुरक्त रहने लगी। राजा प्रसेनजित से कलिंग आदि देशों का अधिपति दुर्दान्त यवनराज ने प्रभावती की मांग की किन्तु माता-पिता ने पुत्री की भावना का आदर करते हुए, यवनराज की मांग को ठुकरा दिया जिससे क्रोधित होकर उसने कलिंग राज्य को घेर लिया तथा धमकी दी की युद्ध करो या प्रभावती को मुझे दो। इन परिस्थितियों मे राजा प्रसेनजित ने एक दूत राजा अश्वसेन के पास भेजा। दूत ने आद्योपांत वृतान्त सुनाते हुए सहायता की मांग की। राजा अश्वसेन बोले- इस दुष्ट यवनराज का इतना दुःसाहस, राजा प्रसेनजित को किसी प्रकार की चिंता नहीं करनी चाहिये। मै स्वयं दुष्ट यवन से कुशस्थल नगर की रक्षा करूँगा। महाराज के आदेश में रणभेरी बजी, सेना एकत्र होने लगी। पार्श्वकुमार रणघोष सुनकर तत्काल राज्यसभा मे उपस्थित हुए तथा शीघ्रतापूर्वक घटनाक्रम जान लिया एवं पिताजी से निवेदन कर यवनराज को हराने रणभूमि में जाने की आज्ञा प्राप्त की। युवराज शुभ मुहूर्त में गजारूढ होकर कुशस्थल की ओर प्रस्थान किया। देवाधाधिपति शकेन्द्र तीर्थकर के युद्धार्थ प्रयाण को जानकर उनके लिये अपने सारथी को दिव्य अस्त्रों तथा रथ के साथ प्रभु की सेवा मे भेजा। पार्श्वकुमार हाथी से उतरकर दिव्यरथ पर आरूढ हुये तथा कुशस्थल के निकट उद्यान मे देवनिर्मित महल में ठहरे। यवनराज को दूत भेजकर सन्देश दिया-'महाराजा अश्वसेन के पुत्र पार्श्वकुमार ने कुशस्थल से आक्रमण हटाने के लिये सूचित किया है। यवनराज तुम्हारा हित इसी मे है कि तुम युद्ध का दुःसाहस मत करो।"

राजदूत का सन्देश सुनकर यवनराज क्रोधित होते हुए बोला - "मै पार्श्वकुमार से डरने वाला नहीं, अगर पिता-पुत्र दोनों अपने समस्त साथियो को लेकर आ जाएं तो भी मुझसे नहीं जीत सकते। तुम्हारे राजकुमार से जाकर कह दो अगर जीवित रहना चाहते है तो शीघ्र यहाँ से प्रस्थान कर जाए।

यवनराज के धृष्टता पूर्ण शब्द राजदूत सहन नहीं कर सका और क्रोधित स्वर में बोला- "हे यवनराज, तू मेरे स्वामी को नहीं जानता। वे अनन्त बली हैं, वे देवेन्द्र के लिए भी पूज्य हैं। उनके सामने संसार की कोई भी शक्ति नहीं ठहर सकती। देवेन्द्र ने आयुधिक शस्त्र और रथ भेजे हैं। उनकी आप पर कृपा है जो आपको जीवित रहने का सुयोग प्रदान कर रहे हैं।"

दूत के वचन को सुनकर यवन सैनिक भड़क उठे और शस्त्र उठाकर [illegible]

आक्रमण करने हेतु आगे बढे। तभी यवनराज का एक वृद्ध मंत्री उठा और उन सभी को शान्त किया तथा राजदूत से क्षमायाचना तथा संतुष्ट कर विदा किया। इसके वाद वृद्ध मंत्री ने यवनराज के सम्मुख पार्श्वकुमार की महानता का उल्लेख किया तथा तीर्थंकर होने का ज्ञान कराया। यवनराज ने वृद्ध मत्री की सलाह को मानकर मन्त्रियो और अधिकारियो सहित पार्श्वकुमार के स्कन्धावार मे पहुँचा। कुमार का दिव्य रथ, महासेना पार्श्वकुमार का लौकिक प्रभायुक्त भव्य स्वरूप देखकर विस्मित हो गया और सहज ही उसने युवराज को प्रणाम किया। यवनराज ने विनम्रता पूर्वक अपने अपराध के लिए पार्श्वकुमार से क्षमा मांगी और अलौकिक दर्शन कर कृतार्थ हो गया और अपना राज्य समर्पित कर दिया। पार्श्वकुमार ने यवनराज को उचित नीति शिक्षा देकर आत्म कल्याण का सदेश दिया।

प्रसेनजित नरेश पार्श्वकुमार के आगमन एवं विपत्ति टलने से परम प्रसन्न हुए। नरेश सपरिवार राजकुमारी प्रभावती एवं अधिकारी सहित राजकुमार का अभिनन्दन करने तथा पुत्री को अर्पण करने आए। किन्तु पार्श्वकुमार धीर गभीर वाणी मे बोले - राजन् मैं पिताश्री की आज्ञा से केवल आपकी सहायता के लिए आया हूँ, विवाह करने नहीं। अतएव आप यह आग्रह नहीं करे। तब राजा प्रसेनजित अपनी पुत्री, परिजन सहित पार्श्वकुमार के साथ वाराणसी पहुँचे। विजयी युवराज का जनता ने भव्य स्वागत किया। प्रसेनजित ने अत्यन्त आभार मानते हुए महाराजा अश्वसेन को अपना प्रयोजन निवेदन किया।

कुमार माता-पिता तथा प्रसेनजित राजा का आग्रह टाल नहीं सके। कुछ भोग्य कर्म भी शेष थे। उन्होने प्रभावती के साथ विवाह किया तथा अनासक्त जीवन व्यतीत करने लगे।

कमठ से वाद और नाग का उद्धार - एक दिन पार्श्वकुमार, भवन के झरोखे मे नगर की शोभा देख रहे थे। उन्होने देखा नर-नारियो के झुण्ड हाथो मे पत्र-पुष्प-फलादि युक्त चगेरी लेकर नगर के बाहर जा रहे हैं, उन्होने सेवक से पूछा, क्या कोई उत्सव का दिन है जो नागरिक जन नगरी के बाहर जा रहे है ? सेवक ने कहा - 'कमठ' नाम के तपस्वी आये हुए हैं। वे पचाग्नि तप करते है। नागरिक जन उन महात्मा की पूजा-वन्दना करने जा रहे है।''

राजकुमार भी सपरिवार तापस को देखने चले। उन्होने देखा तापस अपने चारो ओर

अग्नि-कुण्ड प्रज्वलित करके तप रहा है और ऊपर से सूर्य के ताप को भी सहन कर रहा है। उन्होंने अपने अवधिज्ञान से तापस की क्रिया और उससे होने वाले अनर्थ का अवलोकन किया। उन्होंने जाना कि अग्नि कुण्ड मे जल रहे काष्ठ के मध्य एक नाग युगल झुलस रहा है। भगवान के मन में दया का वेग उमड़ आया। उन्होने कहा- "अहो ! कितना अज्ञान है, वह धर्म ही क्या और वह तप ही किस काम का जिसमे दया का स्थान ही नहीं रहे। जिस तप में दया का स्थान नहीं, वह तप सम्यग् तप नहीं हो सकता । हिंसा युक्त क्रिया से साधक का आत्महित नहीं हो सकता। दया रहित धर्म व्यर्थ है। पशु के समान अज्ञान कष्ट सहने से काया को क्लेश हो सकता है। ऐसा काय क्लेश कितना ही सहन किया जाए परन्तु जब तक वास्तविक धर्मतत्व को हृदय मे स्थान नहीं मिलता, तब तक ऐसे निर्दय अनुष्ठान से आत्महित नहीं हो सकता।

"राजकुमार तुम्हारा काम क्रीडा करने का है। हाथी-घोडे पर सवार होकर मनोविनोद करना तुम जानते हो। धर्म का ज्ञान तुम्हें नहीं हो सकता। धर्मतत्व को समझने, समझाने का काम हम धर्म गुरुओं का है। तुम्हारा नहीं। हमारे काम मे हस्तक्षेप मत करो। यदि तुम्हें मेरी तपस्या में कोई पाप या हिंसा दिखाई देती हो तो बताओ, अन्यथा अपने रास्ते लगो"- अपने अधिकार एवं प्रभाव में अचानक विघ्न उत्पन्न हुआ देखकर तपस्वी बोला।

कुमार ने अनुचर को आदेश दिया-" इस अग्निकुण्ड का वह काष्ठ बाहर निकालो और उसे सावधानी से चीरो।" सेवक ने तत्काल आज्ञा का पालन किया। लकड़े को चीरते ही उसमे से जलता हुआ एक नाग युगल निकला। पीडा मे तडफते हुए नाग को नमस्कार मंत्र सुनाया और पाप का प्रत्याख्यान करवाया। प्रभु के प्रभाव से नमस्कार मंत्र सुनते ही नाग की आत्मा में समाधिभाव उत्पन्न हुआ। वह आर्त्त-रौद्र ध्यान से बच गया और धर्म ध्यान युक्त आयुपूर्ण करके भवनपति के नाग कुमार जाति के इन्द्र 'धरणेन्द्र' रूप में उत्पन्न हुआ।

जलते हुए काष्ठ में से सर्प निकले और उसे धर्म का अवलंबन देते देखकर उपस्थित जनता की श्रद्धा तापस से हट गई और जनता अपने प्रिय राजकुमार की जय-जयकार करने लगी। पार्श्वकुमार वहाँ से लौटकर स्वस्थान आए।

तपस्वीराज कमठजी का मान भंग हो गया। वह आवेश में आकर अनि [illegible]

करने लगा। वह मिथ्यात्व युक्त तप करता हुआ मरकर भवन वासी देवों की मेघ कुमार निकाय में 'मेघमाली' नाम का देव हुआ।

पार्श्वनाथ का संसार त्याग - भाग्योदय से कर्मफल क्षीण होने पर भी पार्श्वनाथजी के मन में संसार के प्रति विरक्ति अधिक बढी। भगवान ने वर्षीदान दिया। तत्पश्चात् लोकान्तिक देवो ने अपने आचार के अनुसार भगवान के निकट आ कर प्रार्थना की-

"भगवन् ! धर्म-तीर्थ प्रवर्त्तन करे। भव्यजीवो का संसार से उद्धार करने का समय आ रहा है। अब प्रव्रजित होने की तैयारी करे प्रभु !"

लोकान्तिक देव, अपने आचार के अनुसार भगवान से निवेदन करके लौट गये। पौष-कृष्णा एकादशी के दिन विशाखा नक्षत्र मे तेले के तप से, तीन सौ पुरुषो के साथ प्रभु ने, देवेन्द्रो, नरेन्द्रो और विशाल देव-देवियो और नर-नारियो की उपस्थिति मे निर्ग्रन्थ प्रवज्या स्वीकार की। प्रव्रजित होते ही भगवान को मन: पर्यायज्ञान उत्पन्न हो गया। दीक्षा ग्रहण करने के दूसरे दिन आश्रमपद उद्यान से विहार करके भगवान कोपकटक नामक गाव मे पधारे और धन्य नामक गृहस्थ के यहाँ परमान्न से तेले का पारणा किया। देवो ने वहाँ पंचदिव्य की वर्षा की और धन्य धन्य कह कर दान की महिमा की। भगवान वहाँ से विहार कर गए।

कमठ के जीव मेघमाली का घोर उपसर्ग

भगवान साधनाकाल मे विचरते हुए एक वन मे पधारे और किसी तापस के आश्रम के निकट एक कुएँ पर वटवृक्ष के नीचे ध्यानस्थ खडे रहे। उस समय कमठ तापस के जीव मेघमाली देव ने अपने पूर्वभव के शत्रु पार्श्वकुमार को ध्यानस्थ देखा। वह क्रुद्ध हो गया। पूर्वभवो की वैर-परम्परा पुन: भड़की। वह निर्ग्रन्थ महात्मा के लिए उपद्रव करने पर तत्पर हुआ और भगवान के समीप आया। सर्व प्रथम उसने विकराल केसरी-सिंहो की विकुर्वणा की जो अपनी भयकर गर्जना, पूँछ से भूमिस्फोट और रदनो से चिनगारियाँ छोडते हुए चारो ओर से एक साथ टूट पड़ते हुए दिखाई दिए परन्तु प्रभु तो अपनी ध्यानमग्नता मे अडिग, पूर्णतया शान्त और निर्भीक रहे। मेघमाली की यह माया व्यर्थ गई। सिंहो का समूह पलायन कर गया।

अपना प्रथम वार व्यर्थ होने के बाद मेघमाली ने दूसरा वार किया। उसने म

गजसेना बनाई, जो सूँड उठाए चिंघाडती हुई चारों ओर से प्रभु पर आक्रमण करने के लिए आ रही थी। परन्तु प्रभु तो पर्वत के समान अडोल शान्त और निर्विकार खडे रहे। वह गजसेना भी निष्फलता लिये हुए अन्तर्धान हो गई। इसके बाद तीसरा आक्रमण भालुओं का झुण्ड बनाकर किया गया। चौथा भयंकर चीतों के झुण्ड से, पाँचवाँ बिच्छुओं से, छठा भयंकर सर्पो से और सातवाँ विकराल वेतालों के भयंकर रूपों द्वारा उपद्रव करवाया परन्तु वे सभी उपद्रव निष्फल रहे। प्रभु का अटूट धैर्य एवं शान्त समाधि वे नहीं तोड सके।

अपने सभी प्रहार निष्फल होते देख कर वह मेघमाली देव बहुत क्रोधित हुआ। अब वह महाप्रलयकारी घनघोर वर्षा करने लगा। भयंकर मेघगर्जना, कडकती हुई बिजलियाँ और मूसलाधार वर्षा से सभी दिशाएँ व्याप्त हो गई। घोर अन्धकार व्याप्त हो गया। तीक्ष्ण भाला बरछी और कुदाल जैसा दुःखदायक असह्य प्रहार उस मेघ की धाराओं का था। इस प्राणहारक वर्षा से पशु-पक्षी घायल होकर गिरने लगे। सिंह-व्याघ्र, महिष और हाथी जैसे बलवान् पशु भी उस जल धारा के प्रहार को सहन नहीं कर सके और इधर-उधर भाग-दौड कर अपने बचाव करने की निष्फल चेष्टा करने लगे। पशु-पक्षी उस जल प्रवाह में बहने लगे। उनकी अरराहट एवं चीत्कार से सारे वातावरण में विभीषिका छा गई। वृक्ष उखड कर गिरने लगे।

धरणेन्द्र का आगमन : उपद्रव मिटा - भगवान पार्श्वनाथ तो सर्वथा निर्भीक, अडिग और शान्त ध्यानस्थ खडे थे। अंशमात्र भी भय, क्षोभ या चंचलता नहीं। भूमि पर पानी बढते हुए भगवान के घुटने तक आया, कुछ देर बाद जानु तक, फिर कमर, छाती और गले तथा और बढते-बढते नासिका के अग्रभाग तक पहुँच गया। किन्तु प्रभु की अडिगता, दृढता एवं ध्यान में कोई कमी नहीं हुई। प्रभु पर हुए इस भयंकर उपसर्ग से धरणेन्द्र का आसन चलायमान हुआ। उसने अपने अवधिज्ञान से यह दृश्य देखा। उसे कमठ तापस वाली सारी घटना, अपना सर्प का भव और प्रभु का उपकार स्मरण हो आया। वह अपने उपकारी की पापी मेघमाली के उपद्रव से रक्षा करने के लिये, अपनी देवांगनाओं के साथ भगवान के निकट आया। इन्द्र ने भगवान को नमस्कार किया और वैक्रिय से एक लम्बी नाल वाले कमल की रचना करके प्रभु के चरणों के नीचे [illegible] कर ऊपर उठा लिया। फिर अपने सप्त फण से प्रभु के शरीर को छत्र के समान आच्छादित

कर दिया। धरणेन्द्र ने भगवान को इस घोर परीषह से मुक्त किया। धरणेन्द्र प्रभु का भक्त-सेवक था और मेघमाली घोर शत्रु था परन्तु भगवान के मन मे तो दोनो समान थे। न धरणेन्द्र पर राग हुआ और न मेघमाली पर द्वेष।

जब मेघमाली का उपद्रव नहीं रुका, तो धरणेन्द्र ने चुनौतीपूर्वक ललकारते हुए कहा :-

"अरे अधम ! तुझे कुछ भान भी है ? ओ अज्ञानी ! इस घोर पाप से तू अपना ही विनाश कर रहा है। तेरी बुद्धि इतनी कुटिल क्यो हो गई है ? इन विश्वपूज्य महात्मा का अहित कर करके तू किस सुख की चाहना कर रहा है ? मै इन महान् दयालु भगवान का शिष्य हूँ। अब मै तेरी अधमता सहन नही कर सकूँगा। मै समझ गया। तू इन महात्मा से अपने पूर्वभव का बैर ले रहा है। अरे मूर्ख ! इन्होने तो अनुकम्पा वश होकर सर्प को (मुझे) बचाया था और तेरा अज्ञान दूर करके सन्मार्ग पर लाने के लिये हितोपदेश दिया था, परन्तु तू कुपात्र था। तेरी कषायाग्नि भभकी और अब क्रूर बन कर तू उपद्रव कर रहा है। रे मेघमाली ! रोक अपनी क्रूरता को, अन्यथा अपनी अधमता का फल भोगने के लिए तैयार हो जा।"

धरणेन्द्र की गर्जना सुनकर मेघमाली ने नीचे देखा, नागेन्द्र को देखते ही उसे आश्चर्य के साथ भय हुआ। उसने देखा कि जिस संत को मै अपना शत्रु समझकर उपद्रव कर रहा हूँ, उस महात्मा की सेवा मे धरणेन्द्र स्वयं उपस्थित है। मेरी शक्ति ही कितनी है, जो मै धरणेन्द्र की अवज्ञा करूँ और यह महात्मा कोई साधारण मनुष्य नहीं है। साधारण मनुष्य की सेवा मे धरणेन्द्र नहीं आते। ये महात्मा किसी महाशक्ति के धारक अलौकिक विभूति हैं। मेरे द्वारा किये हुए भयानकतम उपद्रवो ने इन महापुरुष को किंचित भी विचलित नहीं किया। यह महात्मा तो अनन्त शक्ति के भण्डार लगते है। यदि क्रुद्ध होकर इन्होंने मेरी ओर देख भी लिया होता तो मेरा अस्तित्व ही नहीं रहता।

"हाँ, मै अज्ञानी ही हूँ, मैने महापाप किया है, मै इन परम पूज्य [illegible] जाऊँ और क्षमा माँगू, इसी मे मेरा हित है।"

अपनी माया को समेटकर वह प्रभु के समीप आया [illegible] "भगवन् ! मै पापी हूँ। मैने आपकी हित शिक्षा को नहीं [illegible] अमृतमय वाणी का विपरीत परिणमन हुआ और [illegible]

महाक्रूर वन गया। प्रभु आप तो पवित्रात्मा हैं। आपके हृदय में क्रोध का लेस भी नहीं है। हे क्षमा के सागर! मुझ अधम को क्षमा कर दीजिए। वास्तव में मैं न तो मुँह दिखाने योग्य हूँ, न क्षमा का पात्र हूँ। परन्तु प्रभो! मैं आपकी शरण आया हूँ। आपको शरणागत पर कृपा करनी होगी।

इस प्रकार वार-वार क्षमा मांगते हुए मेघमाली ने प्रभु को वन्दना की और धरणेन्द से क्षमायाचना कर स्वस्थान चला गया। उपसर्ग मिटने पर धरणेन्द्र भी प्रभु को वन्दना करके स्वस्थान चला गया।

प्रभु वहाँ से विहार करके वाराणसी आश्रम पद उद्यान में पधारे और घातकी वृक्ष के नीचे ध्यान में लीन हो गए। दीक्षा दिन से तिरयासी रात्रि पूर्ण हो चुकी थी। चैत्र कृष्ण ४, विशाखा नक्षत्र, में चन्द्रमा का योग था। घातिकर्म नष्ट होने का समय आ गया था। भगवान ने धर्म-ध्यान से आगे वढ़कर शुक्ल ध्यान मे प्रवेश किया और वर्द्धमान परिणामों से घाती कर्मों को नष्ट करके केवल ज्ञान, केवल दर्शन प्रकट कर लिया। देव-देवियों और इन्द्रो ने महोत्सव किया। केवलज्ञान होने के वाद भगवान ने अपनी प्रथम धर्म देशना दी। चतुर्विध संघ की स्थापना की। ३० वर्ष तक गृहस्थावस्था। ७० वर्ष तक दीक्षा पर्याय का पालन कर १०० वर्ष की आयु मे सिद्ध वुद्ध मुक्त हुए।



२. सुलसा श्राविका

परिचय - राजगृह नगर में 'नाग' नामक सारथी रहता था, उसकी पत्नी का नाम सुलसा था। वह श्राविका थी। भगवान महावीर स्वामी की तीन लाख अट्ठारह हजार श्राविकाओ मे उसका नाम पहला था क्योकि वह सम्यक्त्व में दृढ थी तथा उसमे दान की भावना आदि कई विशिष्ट गुण थे।

पुत्र के अभाव में-सुलसा को कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ था पर उसने इसका कोई विचार नहीं किया। प्राय: स्त्रियॉ पुत्र न होने पर देवी-देवताओ की शरण लेती है। उनकी मनौती करती है। मंत्र-तंत्र करवाती है पर उसने देवी-देवताओ की शरण या मंत्र-तत्र करने का मन मे भी विचार नहीं किया। उसकी यह दृढता थी कि पुत्र चाहे हो, चाहे ना हो परन्तु अरिहंत देव के अतिरिक्त अन्य किसी देव को मस्तक नहीं झुकाऊँगी। नमस्कार मंत्र के अतिरिक्त दूसरा मत्र कभी स्मरण नहीं करुँगी।

सुलसा के पति नाग को पुत्र की बहुत अधिक अभिलाषा थी। उसने पुत्र प्राप्ति के लिए अन्य देवी-देवताओ को पूजना आरम्भ किया व मंत्र-तंत्रो का स्मरण चालू किया।

सुलसा-नाग की चर्चा

जब सुलसा को यह जानकारी हुई, तो उसने अपने पति को समझाया-'नाथ ! इन देवी-देवताओं की पूजा छोडो। मंत्र-तंत्र का स्मरण छोडो। हमे एक मात्र अरिहंत देव और नमस्कार मत्र का ही स्मरण करना चाहिये। अरिहत व सिद्ध को ही देव मानना चाहिये। अन्य देव-देवियो और मंत्र-तंत्रों पर श्रद्धा रखना मिथ्यात्व है।

'नाग' ने कहा सुलसे ! मै अरिहंत देव और नमस्कार मत्र पर ही श्रद्धा रखता हूँ। मुझे अन्य देवी-देवताओ और अन्य मत्रो पर श्रद्धा नहीं है, मै उन्हे संसार तारक या मोक्ष देने वाला नहीं मानता पर ये लौकिक देव और लौकिक मत्र हैं। पुत्र की आशा लौकिक आशा है । मै मानता हूँ कि ये लौकिक आशा पूर्ण करने में सहायता दे सकते हैं इसलिये मैं इन्हें पूजता हूँ और स्मरण करता हूँ। सुलसा ने कहा - स्वामी ! यद्यपि अन्य देवो और मंत्रो पर हमारी श्रद्धा नहीं है, पर उन्हे पूजने और उनके स्मरण करने की प्रवृत्ति तो मिथ्यात्व

की ही है। हमें मिथ्यात्व की प्रवृत्ति से बचना ही चाहिये।

दूसरी बात यह है कि, यदि पूर्व जन्म में शुभ कर्म नहीं किये हैं, तो यह अन्य देव-देवियाँ और मंत्र-तंत्र हमें कुछ भी नहीं दे सकते और न सहायता ही कर सकते है।

नाग ने कहा- सुलसे तुम्हारा कहना सत्य है। पर हमारे पूर्व जन्म के पुण्य अभी उदय मे न आये हों परन्तु भविष्य में उदय की संभावना हो तब तो ये देवता और मंत्र हमारी सहायता समय से पूर्व उदय में लाकर कर सकते है। यह सोच कर ही मैं अन्य देवों को नमस्कार करता हूँ, मंत्रो का स्मरण करता हूँ।

सुलसा ने कहा- नाथ ! आपका यह कहना सत्य है। परन्तु मैं मिथ्यात्व की प्रवृत्ति अपनाना नहीं चाहती। यदि मान लो की हमारे अन्तराय का उदय है तो दोनों ओर हमारी हानि ही है। पुत्र की प्राप्ति भी नहीं होगी और मिथ्यात्व प्रवृत्ति का पाप भी लग जाएगा। यदि आपको पुत्र की अभिलाषा है तो आप अन्य स्त्री से लग्न कर लीजिये, पर मिथ्यात्व की प्रवृत्ति का सेवन मत कीजिये। जो लोग मुझे बांझ कहते है इसका आप कोई भी विचार मत कीजिये। जो सम्यक्त्व पर दृढता का महत्व जानते है, वे हमारी निंदा नहीं करेंगे तथा सम्यक्त्व दृढता का महत्व नहीं जानते है, उनकी बात हमें सुनना ही क्यों चाहिये।

नाग ने कहा - 'सुलसे ! मै तुम्हारा कहना मानकर मिथ्यात्व की प्रवृत्ति छोड़ देता हूँ पर मै दूसरा विवाह नहीं करूँगा। मैं पुत्र चाहता हूँ पर तुम्हारी ही कुक्षी से उत्पन्न पुत्र चाहता हूँ।

सुलसा ने कहा - धन्य है, आर्यपुत्र ! आपने मिथ्या प्रवृत्ति छोड़ने का अच्छा निश्चय किया। धर्म पर दृढ रहने से अशुभ कर्मो का क्षय होता है जिससे अनिष्ट का विनाश होता है और इष्ट की प्राप्ति होती है।

धन्य है सुलसा को, जिसने बांझ रहना स्वीकार किया, अपने द्वारा सौत का आना स्वीकार किया, पर मिथ्यात्व की प्रवृत्ति करना स्वीकार नहीं किया। स्वयं ने मिथ्यात्व त्यागा और पति को भी मिथ्यात्व से दूर रखा।

शक्रेन्द्र द्वारा प्रशंसा - सुलसा की इस दृढ़ता और सत्य धर्म की प्रशंसा करते हुए पहले देव लोक के 'शक्र' नामक इन्द्र ने देवताओं की भरी सभा में कहा - "भरत [illegible]

के नाग सारथी की पत्नी सुलसा श्राविका धन्य है क्योकि वह सम्यक्त्व पर दृढ है। कोई देव दानव भी उसे सम्यक्त्व से डिगा नहीं सकता।'

उसकी अरिहंत देव निर्ग्रन्थ गुरु और केवली प्ररूपित धर्म पर श्रद्धा इतनी दृढ है कि वह संसार का सुख छोड सकती है, पर मिथ्यात्व की प्रवृत्ति कभी नहीं अपनाती। उसे कितनी भी हानि पहुँचे, कितना भी कष्ट पहुँचे, फिर भी श्रद्धा से नहीं डिगती।

देव द्वारा परीक्षा - एक मिथ्यादृष्टि देव को यह बात सहन नहीं हुई। वह सुलसा की परीक्षा के लिए साधु का रूप बनाकर सुलसा के घर पहुँचा। सुलसा ने उसको साधु समझ कर वन्दन, नमस्कार किया एव पूछा भन्ते मेरे योग्य सेवा फरमाइये। देव ने कहा- श्राविके ! मेरे वृद्ध गुरु के शरीर मे भयंकर बीमारी है। उनके उपचार के लिये वैद्यो ने मुझे लक्षपाक तेल बताया है। इसलिये मुझे उस तेल की आवश्यकता है। यदि तुम्हारे घर प्रासुक (सुझता) हो तो चाहिये। सुलसा ने कहा- भते ! आप कृपा कीजिये, आज का दिन धन्य है।'' यह कहकर वह लक्षपाक तेल लेने गई। लक्षपाक तेल लाख वस्तुओ से बनता है। उसके बनने मे लाखो रुपये खर्च होते है। लक्षपाक तेल की उसके घर मे तीन शीशियाँ थी। वे जहाँ थी, वहाँ पहुँच कर वह एक शीशी उतारने लगी कि देव माया मे शीशी फिसलकर नीचे गिर गई और फूट गई। दूसरी और तीसरी शीशी की भी यही स्थिति हुई। इस प्रकार उसके लाखो रुपये मिट्टी मे मिल गये पर उसके मन मे खेद नहीं हुआ। उसे यह विचार ही नहीं आया कि ये कैसे साधु है जिन्हे दान देते हुए मेरे मूल्यवान पदार्थ नष्ट हो गये, वरन् उसे इस बात का खेद हुआ कि ''मेरी यह वस्तुएँ सतो के काम नहीं आ सकी। मेरे हाथो से दान नहीं हो सका। संत मेरे यहाँ पधारे परन्तु उन्हे आवश्यक वस्तु नहीं मिल सकी। मेरे दानान्तराय कर्म के उदय से औषधि नहीं दे सकी। अव इनके वृद्ध गुरु (सत) की बीमारी कैसे दूर होगी। आह ! वे मुनिवर कितने कष्ट पा रहे होंगे। मुझ अभागिन ने ध्यान से वह शीशियाँ नहीं उतारी। ऐसे समय मे मुझसे सावधानी क्यो नहीं रही। धिक्कार है मुझे, यह कहते हुए उसका मुँह कुम्हला गया, आँखे डबडबा गई।

देवता यह सारे दृश्य देख रहा था। अवधि ज्ञान से सुलसा की व्यथा को भी समझ रहा था। उसे प्रत्यक्ष हो गया कि शकेन्द्र जो कह रहे थे, वह सर्वथा सत्य था। सचमुच यह सम्यक्त्व मे बहुत दृढ है। देवता ने सुलसा के सामने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया और

कहा - श्राविके ! खेद न करो, यह तो मेरी देव माया थी, जो मैंने तुम्हारी सम्यक्त्व की दृढता की परीक्षा के लिये की थी। धन्य हो तुम, इन्द्र भी तुम्हारी प्रशंसा करते हैं।

सुलसे ! मैं प्रसन्न हुआ। जो तुम्हारी इच्छा हो वही मांगो। मैं उसकी पूर्ति करूंगा। सुलसा ने कहा- देव ! मेरी तो यही इच्छा है कि मेरी सम्यक्त्व पर दृढता बनी रहे, मेरा सम्यक्त्व रत्न सुरक्षित रहे। पर यदि आप कुछ देना चाहते हैं तो मेरे पति की पुत्र की अभिलाषा है, वह पूरी करें।

देवता ने उसे पुत्र उत्पत्ति में सहायक बत्तीस गुट्टिकाएँ दी और समय पडने पर 'मुझे स्मरण करना'- यह कहकर वह देवलोक में लौट गया। कालान्तर मे उसके अनेक पुत्र हुए।

भगवान द्वारा प्रशंसा - चम्पानगरी की बात है। भगवान महावीर स्वामी वहाँ विराजमान थे। वहाँ अम्वड़ नामक एक श्रावक आया। वह अनेक विद्याओ का जानकार था। उसने भगवान महावीर स्वामी की वाणी सुनकर, उन्हें वन्दना-नमस्कार करके कहा 'भंते ! आपका उपदेश सुनकर मेरा जन्म सफल हो गया। अब मै राजगृह नगरी जा रहा हूँ।

भगवान ने कहा - 'अम्बड !' तुम जिस नगरी में रह रहे हो, वहाँ सुलसा श्राविका रहती है। वह सम्यक्त्व मे वहुत दृढ है।

अम्वड़ द्वारा परीक्षा : अम्वड ने सोचा- भगवान जो कुछ कह रहे हैं वह सत्य है है किन्तु मैं परीक्षा करके प्रत्यक्ष देखूँ तो सही कि 'वह सम्यक्त्व में किस प्रकार दृढ है।'

राजगृह पहुँच कर विद्या के वल से उसने सन्यासी का रूप बनाया और सुलसा के घर जाकर कहा - ''आयुष्मति ! (लम्बे आयुष्य वाली) मुझे भोजन दो। इससे तुम्हें धर्म होगा, मोक्ष की प्राप्ति होगी।''

सुलसा ने उत्तर दिया - 'सन्यासीजी ! अनुकम्पा बुद्धि से मैं प्रत्येक को भोजन दे सकती हूँ आपको भी देती हूँ परन्तु, धर्म और मोक्ष आपको देने से नहीं हो सकता कि देने से धर्म और मोक्ष होता है- यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ।'

यह सुनकर अम्वड उसके घर से बिना भिक्षा लिए लौट गया और नगर के बाहर गया। वहाँ उसने आकाश में अधर कमल का आसन वैक्रिय से बनाया और उसके ऊपर

बैठकर तपश्चर्या करने का दिखावा करने लगा। लोग उसे अधर कमल के आसन पर तपश्चर्या करते देख आश्चर्यचकित होने लगे।

कुछ स्त्रियॉ, जो उस अम्बड को देखकर लौटती थीं, वे सुलसा के पास अम्बड के कमल अधरासन और तपश्चर्या की प्रशंसा करतीं। उसके अतिशय का बखान करतीं और सुलसा को उसके दर्शन करने की प्रेरणा करतीं, पर वह इन आडम्बरो के चक्कर मे नहीं आई।

सैकडों-हजारो लोग अम्बड के दर्शन के लिए आने लगे। उसकी पूजा-भक्ति होने लगी और पारणे के लिए निमन्त्रण पर निमन्त्रण आने लगे। पर वह सबको निषेध करता रहा।

लोगों ने पूछा - 'योगीराज !' आप पारणे के लिये किसी का भी निमत्रण स्वीकार नहीं करते, तो क्या हमारा नगर अभागा है ? आप जैसे महान् अतिशय वाले तपस्वी, हमारे यहॉ से आहार लिए बिना भूखे ही पधार जाऍगे ? नहीं, नहीं ऐसा नहीं हो सकता। हमारे गॉव में कोई न कोई तो ऐसा पुण्यशाली होगा, जो आपको पारणा कराकर कृतार्थ बनेगा। आप कृपया उस भाग्यशाली का नाम बतावे, हम अभी उसे सूचित करते है।''

दिव्य योगी रूपधारी अम्बड ने कहा- ''पुरजनो ! आपके यहॉ सुलसा नामक नाग पत्नी रहती है। वह यदि उसके यहॉ पारणा करायेगी तो मै पारणा करूँगा।'' यह सुनकर लोग सुलसा के घर पहुँचे।

सुलसा की धर्मनिष्ठा - सब लोगों ने आकर सुलसा से कहा - 'बधाई है सुलसा ! बधाई है। वे अपूर्व योगीराज तुम्हारे यहॉ पारणा करना चाहते हैं। उन्हें पारणा कराओ और भाग्यशाली बनो।' तो उसने अम्बड़ की उस विकुर्णा को जानकर उत्तर दिया- ''पुरजनो ! मै अरिहत को ही देव, निर्ग्रन्थ को ही गुरु और केवली प्रम्पित तत्व को ही धर्म मानती हूॅ। मुझे इन जैसे साधुओ पर कोई श्रद्धा नहीं है।''

सच्चे साधु अपने अतिशय का दिखावा और तप की प्रसिद्धि नहीं करते। 'उस के पारणा करूँगा' ऐसा नहीं कहते हैं। वे अपनी उपलब्धियों (ऋद्धियों) को गुप्त रखते हैं तपश्चर्या को प्रकट नहीं करते हैं। बिना सूचना दिए घरों में प्रवेश करते हैं और [illegible]

से गोचरी लेकर संयम यात्रा चलाते हैं। ऐसे मिथ्या साधुओं को पारणा करने से फायदा नहीं।" यह उत्तर सुनकर पुरजन बहुत खिन्न हुए। कुछ ने यह उत्तर उस रूपधारी योगीराज को सुनाया। इस उत्तर को सुनकर अम्बड़ को यह प्रत्यक्ष हो गया कि सुलसा सम्यक्त्व मे कितनी दृढ़ है ? यह आडम्बर और लोकमत से किस प्रकार अप्रभावित रहती है।

अम्बड़ द्वारा प्रशंसा – उसने अपना वेश बदला और सभी लोगो के साथ 'नवकार मंत्र' का उच्चारण करते हुए सुलसा नागपत्नी के घर में प्रवेश किया। सुलसा ने उस समय अम्बड़ को स्वधर्मी समझ कर उठकर उसे सत्कार-सम्मान किया। अम्बड ने भी भगवान द्वारा की कई प्रशंसा पुरजनों को सुनाई और अपने द्वारा की गई परीक्षा बताकर सुलसा की स्वयं ने भी बहुत प्रशंसा की।

लोगों ने भी यह सब देखकर सुलसा के सम्यक्त्व- दृढता की भूरि-भूरि प्रशंसा की।



हर दिन इस तरह विताओ कि,
रात को चैन की नींद सो सको।
हर रात इस तरह विताओ कि
जागो तो किसी को मुँह दिखाने में न शरमाओ॥
जवानी को इस तरह विताओ कि
वुढ़ापे में पछताना ना पड़े।
और वुढापे को इस तरह विताओ कि
किसी के सामने हाथ फैलाना ना पड़े॥

३. क्षमा-धनी खंधक मुनि

जन्म और शिक्षा - श्रावस्ती नगरी मे न्याय नीतिवान् 'कनककेतु' नाम का राजा राज्य करता था। उन्हे सर्वगुण सम्पन्न, "स्कंधक" नामक एक पुत्र रत्न एवं सुनंदा नामक एक पुत्री रत्न की प्राप्ति हुई। योग्य वय में राजकुमारी सुनंदा का विवाह कांची नरेश पुरुषसिंह के साथ हुआ। राजकुमार स्कंधक ७२ कलाओं मे निपुण बन विवाह योग्य होने पर स्वजनो ने किसी सुन्दर कन्या से स्कंधक का विवाह करना चाहा पर होनी को कुछ और ही मंजूर था।

विरक्ति और दीक्षानुमति - श्रावस्ती नगरी मे आचार्य श्री विजयसेन का आगमन हुआ। राजा कनककेतु एवं राजकुमार स्कधक आचार्य श्री के दर्शन-वंदन हेतु गये। उनके श्री मुख से जिनवाणी श्रवण कर राजकुमार के भीतर पूर्व भव के सुसस्कार जागृत हुए। संसार को असार जानकर स्वजनों से दीक्षा की आज्ञा मागते है। पहले तो माता-पिता मोहवश आज्ञा नहीं देते हैं। किन्तु अंत में पुत्र का दृढ वैराग्य देखकर आज्ञा देते हुए कहते है- "हे पुत्र ! जिस सिह वृत्ति से दीक्षा ले रहे हो उसी सिंह-वृत्ति (शूर-वीरता) के साथ पालन करना" राजकुमार ने माता-पिता की आज्ञानुसार उत्कृष्ट संयम का पालन करते हुए ज्ञानार्जन के साथ-साथ घोर तप भी करने लगे। गीतार्थ बन जाने पर गुरु ने उन्हे एकाकी विचरण की आज्ञा दी और वे ग्रामानुग्राम विचरण करने लगे।

पिता का ममत्व - *इधर माता-पिता को चिता हुई कि राजकुमार स्कंधक वडा* सुकुमार व युवा है। अति दुष्कर संयम मार्ग पर ये कैसे चल सकेगा ? इसलिए पिता ने मोहवश उनके संरक्षण के लिये अपने पॉच सौ सुभटो-सेवको को वहुत ही सजगता के साथ गुप्त रूप से साधारण नागरिकों की वेशभूषा मे पीछे रहने का आदेश दिया।

बहिन के राज्य में - दीक्षा के दिन से ही कठोर तपस्या करते हुए स्कंधक मुनि ने अपने शरीर को तप की भट्टी मे सुखा दिया। जिससे उनका शरीर चमडी से ढंका हुआ हड्डियो का ढांचा मात्र रह गया। ऐसे तपोमूर्ति महामुनि विचरण करते हुए अपनी सांसारिक बहन के राज्य में पधारे। साधारण वेश धारी सैनिको ने समझा कि इस समय मुनिराज अपने बहनोई के राज्य मे पधारे है अत: शंका जैसी कोई वात नहीं है। ऐसा सोचकर रक्षक निश्चिंत हो अपने कर्त्तव्य से विमुख हो अन्य प्रवृत्तियों मे संलग्न हो गए।

इधर महामुनि स्कंधक अनेक उच्च, मध्यम, निम्न कुलों से निर्दोष भिक्षा प्राप्त

करते हुए राज महल के निकट पहुँचे। उस समय महल के गवाक्ष मे राजा और रानी [illegible] वार्तालाप में संलग्न थे। इतने में महारानी की नजर तप तेज से प्रदीप्त मुनिश्रीजी के [illegible] पर पडी और विचार करने लगी- अहो ! मेरे भ्रातामुनि भी कहीं न कहीं इस भीषण गर्मी में तप्ती धरा पर नंगे पांवों से इसी वेश में भिक्षाचर्या के लिए परिभ्रमण कर रहे होंगे।

विचारों की तल्लीनता में रानी मुनि को एकटक दृष्टि से निहारने लगी। तपस्या से मुनि का शरीर अत्यन्त कृश हो जाने से रानी अपने भ्राता मुनि को पहचान नहीं [illegible] कठोर साधुचर्या और स्वयं की आरामदायक स्थिति की तुलना करते हुए महारानी [illegible] मुनि के दुस्सह कष्टो के स्मरण से रोमांचित हो गई और उनकी आँखो से आंसू [illegible] पडे।

राजा का संदेह - महारानी के अश्रुओ को देख राजा गभीर बन गए व [illegible] जानने के लिए राजा ने पथ की ओर देखा तो उनकी नजर मुनिश्री पर पडी। ओहो ! [illegible] बात है। इसके कारण ये आंसू हैं। राजा का मन सशय ग्रस्त बन गया। रानी के [illegible] संदेह की आशंका मानकर तत्काल राजा ने निर्णय किया कि इस साधु को ही मरवा दूं जिससे मेरे और रानी के संबंधो को कोई हानि नहीं पहुंचे।

राजा का आदेश - राजा वहाँ से अपने व्यक्तिगत महल में आया और चाण्डालों को बुलाकर आदेश दिया कि राजमहल के निकट राजपथ से जो भिक्षुक कुछ देर पूर्व निकला है, उसे पकडकर किसी दूर एकान्त जंगल मे या वधशाला में ले जाओ और सिर से पांव तक उसकी खाल उतार लो।

चाण्डाल आश्चर्यचकित थे। वे जानते थे कि ऐसे भिक्षुक जैन मुनि होते हैं और जैन मुनि तो रास्ते की चींटी तक को अपने पैरों के नीचे नहीं आने देते, ऐसे [illegible] होते हैं, पर क्या करते वे राजा की आज्ञा से इनकार करने का साहस भी [illegible] बेमन से वे चाण्डाल उन मुनिश्री के पास आकर राजाज्ञा की बात बताते हैं। मुनिश्री [illegible] जाते हैं कि विकट परिषह उपस्थित हो गया है, पर वे अपना धैर्य नहीं खोते, मन [illegible] भावों मे नहीं आने देते। चुपचाप चाण्डालों के बताए पथ पर चलने लगते हैं। [illegible] एक सुनसान स्थल पर चाण्डाल ठहरते हैं, मुनि भी ठहर जाते हैं और [illegible]

मुनि की क्षमाशीलता - चाण्डाल [illegible] शस्त्रों से मुनि [illegible] उतारने लगते हैं; चमडी [illegible] लगते हैं। असह्य वेदना होती है। [illegible]

धारण कर सहज बने रहते हैं कि "मै शरीर नहीं, मै तो आत्मा हूॅ। जो वेदना हो रही है वह मुझे नहीं, शरीर को हो रही है। इन चाण्डालों की और राजा की भी कोई गलती नहीं है। गलती यदि किसी की है तो मेरी। निश्चय ही मैने अपने किसी पिछले जन्म मे कोई महा अशुभ कर्म किया होगा, जिसका फल इस रूप मे भोगना पड रहा है। शरीर के अधिकांश भाग की चमडी उतर चुकी थी और चाण्डाल का कार्य जारी था। उस समय मुनि स्कंधक परिणामो की विशुद्धता से क्षपक श्रेणी पर आरूढ हो गये। केवल ज्ञान-केवल दर्शन को प्राप्त कर सब दु:खो से मुक्त हो गए।

भ्राता मुनि की हत्या - सुनन्दा ने जाना - चाण्डाल अपना कार्य समाप्त कर वहॉ से चले गये। उधर रक्त रजित मुनिवर की मुख वस्त्रिका, रजोहरण को मास का टुकडा समझ एक चील ने झपट्टा मारकर उसे अपने पंजो मे दबोच, आकाश मे उडने लगी। संयोग से वह रजोहरण, मुखवस्त्रिका उसके पजो से छूट गई और ठीक महारानी सुनन्दा के महल में, उन्ही के समक्ष गिरी। यह यहॉ कैसे ? किसी पक्षी ने गिराई है तो किसके खून से भरी हुई और क्यो ?

दासियो से ज्ञात कराती है। दासियां आकर जो कुछ बताती है उससे मुनि के घात का प्रसंग, राजाज्ञा का प्रसंग, चमडी उतारने का प्रसंग ज्ञात हो जाता है। तो महाराज ने स्वयं मुनि की हत्या करवाई है। जिज्ञासा बढ जाती है , आगे खोज करवाती है, तब महारानी को ज्ञात होता है कि जिस मुनि की हत्या करवाई गई, वह उनका ही भ्राता था। महाराज ने उसे लेकर चारित्रिक संदेह किया जिसका यह परिणाम था।

महाराज का पश्चाताप - महारानी अत्यन्त व्यथित हुई। बडा करुण विलाप किया। महाराज को भी जब सारी बाते ज्ञात हुई तो वे भी बहुत पछताये। सोचा- हाय ! मैने कैसा जघन्यतम् नृशंसता पूर्ण कुकृत्य कर डाला ? अरे ! मेरे जैसा पापी, दुष्ट और हत्यारा कौन इस पृथ्वी पर होगा ? जिसने एक निरपराधी, शात, दात क्षमावीर साधु की हत्या करवा दी। इस पर रानी बोली - हे स्वामी ! ऐसा दुष्कृत्य करने से पहले पता तो लगा लेते, क्योकि न तो मैने विकार वश मुनिराज पर दृष्टि डाली थी और न ही मुनिराज के मन मे किसी प्रकार का पापांश था। इस प्रकार महाराजा को सारी बाते ज्ञात हुई तो वे बहुत पश्चाताप करने लगे।

काचरे छीलने की प्रशंसा का फल - देह की उतारी खाल - एक बार किसी

लब्धिधारी, विशिष्ट ज्ञानी मुनि का कांचीपुर आना हुआ तो राजा व रानी ने उनके चरणों में, दर्शन वंदन किया और पूछा 'भगवान्! मेरे द्वारा मुनि हत्या जैसा जघन्य पाप का कारण क्या था ? क्या केवल मन में उत्पन्न संदेह ही था या अन्य कुछ ?

मुनिराज ने बताया - "आज से एक हजार वर्ष पूर्व स्कंधक राजकुमार, और मुनिजी के जीव ने एक काचरे को बहुत ही सावधानी व चतुरता से ऐसा छीला कि उसका छिलका अखण्ड रहा। उस समय उस जीव ने अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्त की कि अहा! मैंने कितनी चतुरता के साथ छिलका अखण्डित उतार लिया। उसे गोल-गोल बनाकर रख दूं तो कोई जान नहीं सकता कि यह साबुत काचरा होगा या केवल छिलका है। राजा! काचरे का वह जीव तुम हो। एक हजार वर्ष पूर्व के वैराणुबंध का बदला तुमने इन मुनि की खाल उतरवाकर लिया है। काचरा (ककडी) छिलने वाले जीव ही इस भव में स्कंधककुमार और बाद में स्कंधक मुनि। पाप में अति प्रसन्नता अनुभव के कारण निकाचित कर्म बंधन हुए। अतः तुमने उससे पूर्व वैर का बदला इस तरह लिया।"

राजा पुरुषसिंह व रानी सुनंदा दीक्षित - राजा पुरुषसिंह ने मुनिराज से पूर्व भव का सारा प्रसंग चिंतन-मनन करते हुए संयम पथ ग्रहण करते हुए संयम पथ ग्रहण करने की भावना जगी। रानी सुनंदा तो भ्राता मुनि की खाल खिंचवाने के प्रसंग से ही संसार से विरक्त बन चुकी थी। इन दोनो ने दीक्षा अंगीकार कर अपना आत्म कल्याण का पथ प्रशस्त किया।

राजा कनककेतु व रानी मलय सुन्दरी भी दीक्षित - स्कंधक मुनि के माता-पिता ने संरक्षण हेतु जिन गुप्तचरों को नियुक्त किया था, उन्होंने आकर महाराजा कनककेतु एवं रानी मलय सुन्दरी को यह बता दिया कि किस तरह मुनिवर की खाल उतारी गई और उन्होंने कैसे अत्यन्त शांत स्वभाव से सहन करते हुए प्राण त्याग दिए।

गुप्तचरों से अपने दीक्षित पुत्र के पूर्ण प्रसंग को जानकर वे दोनों राजा-रानी भी संसार से विरक्त बन दीक्षित हो गये। उन्होंने भी अपना शेष जीवन 'तप' में मग्न रहते हुए निजात्मा को भावित करते हुए बिताया एवं समाधिमरण को प्राप्त किया।

***

१. श्री भक्तामर स्तोत्र

भक्तामर - प्रणत - मौलि - मणि - प्रभाणा
मुद्योतकं दलित - पाप - तमो - वितानम्।
सम्यक् - प्रणम्य जिन - पाद - युगं युगादा,
वालम्बनं भव - जले पततां जनानाम्।।१।।

य: संस्तुत: सकल - वाङ्मय तत्त्वबोधा -
दुद्भूत - बुद्धि पटुभि: सुर - लोक - नाथै:।
स्तोत्रैर् - जगत् त्रितय - चित - हरै - रुदारै:।
स्तोष्ये - किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्।।२।।

बुद्धया विनाऽपि विबुधार्चित - पाद - पीठ
स्तोतुं समुद्यत - मतिर् - विगत - त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल - संस्थित - मिन्दुबिम्ब
मन्य: क इच्छति जन: सहसा ग्रहीतुम्?।।३।।

वक्तुं गुणान् गुण समुद्र ! शशांक - कान्तान्,
कस्ते क्षम: सुर - गुरु - प्रतिमोऽपि बुद्धया?
कल्पान्त - काल - पवनोद्धत - नक्र चक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्? ।।४।।

सोऽहं तथापि तव भक्ति - वशान् - मुनीश,
कर्तु स्तवं - विगत - शक्तिरपि - प्रवृत्त:।
प्रीत्याऽऽत्म - वीर्य - मविचार्य मृगो - मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निज-शिशो: परि पालनार्थम्।।५।।

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहास - धाम,
त्वद् - भक्तिरेव मुखरी - कुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल - मधौ मधुरं - विरौति,
तच्चाम्र - चारु - कलिका निकरैक हेतुः ॥६॥

त्वत्संस्तवेन भव - संतति - सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षय - मुपैति शरीर - भाजाम्।
आक्रान्त - लोक - मलि - नील मशेषमाशु,
सूर्यांशु - भिन्नमिव शार्वर - मन्धकारम् ॥७॥

मत्वेति - नाथ ! तव संस्तवनं - मयेद
मारभ्यते तनु - धियापि - तव - प्रभावात्।
चेतो - हरिष्यति - सतां नलीनी - दलेषु,
मुक्ता - फल - द्युतिमुपैति ननूद - बिन्दुः ॥८॥

आस्तां तव स्तवन - मस्त - समस्त - दोषं,
त्वत्संकथाऽपि - जगतां दुरितानि - हन्ति।
दूरे - सहस्त्र - किरणः - कुरुते - प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानी विकास - भाञ्जि ॥९॥

नात्यद्भुतं - भुवन - भूषण ! भूतनाथ: !
भूतैर्गुणैर्भुवि - भवन्त् - मभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति - भवतो - ननु तेन - किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्म - समं करोति ॥१०॥

दृष्ट्वा - भवन्त - मनिमेष - विलोकनीयं,
नान्यत्र - तोषमुपयाति - जनस्य - चक्षुः,
पीत्वा पयः - शशिकर - द्युति - दुग्धसिन्धोः,
क्षारं - जलं जलनिधेर सितुं क इच्छेत् ॥११॥

यैः शान्त - राग - रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैक - ललाम - भूत ।
तावन्त - एव - खलु - तेऽप्यणवः - पृथ्वियां,
यत्ते - समान - मपरं नहि - रूपमस्ति ॥१२॥

वक्त्रं - क्व - ते - सुर - नरोर गनेत्रहारि,
निःशेष - निर्जित - जगत् - त्रितयोपमानं ।
बिम्बं, कलंक - मलिनं क्व - निशाकरस्य,
यद् वासरे भवति पाण्डु पलाश -कल्पम् ?१३॥

सम्पूर्ण - मंडल - शशांक - कला - कलाप-
शुभ्रा - गुणास्त्रिभुवनं - तव - लंघयन्ति ।
ये संश्रितास् - त्रिजगदीश्वर ! नाथ - मेकं,
कस्तान्निवारयति संचरतो - यथेष्टम् ?।१४॥

चित्रं - किमत्र - यदि - ते - त्रिदशांगनाभिर
नीतं - मनागपि - मनो न विकार - मार्गम् ।
कल्पान्त - काल - मरुता - चलिता - चलेन,
किं मन्दराद्रि शिखरं चलितं कदाचित् ? ।१५॥

निर्धूम - वर्तिर पवर्जित - तेलपुरः,
कृत्स्नं जगत् - त्रय मिदं प्रकटी - करोषि ।
गम्यो न जातु - मरुतां - चलिताचलानाम्,
दीपोऽपरस् त्व मसिनाथ ! जगत्प्रकाशः ॥१६॥

***

२. आत्मशुद्धि

आत्मशुद्धि हित धर्म ध्यान का, चिन्तन जो नर करता है।
अशुभ कर्म को दूर हटाकर मोक्षमार्ग पग धरता है॥१॥

जग में अकेला आया हूँ और यहाँ से अकेला जाऊँगा।
कर्म शुभाशुभ संग में लेकर, यथास्थान में पाऊँगा॥२॥

मेरा मेरा करके फँसता, नहीं कोई जग में तेरा।
देह छोड़कर उड़ेगा पंछी, भिन्न स्थान होगा डेरा॥३॥

महा विडम्बना है परिजन की, अन्त साथ नहीं जाता है।
निर्भय होकर देखो प्राणी, मरण अकेला पाता है॥४॥

धन्य-धन्य नमिराज ऋषि ने, एकत्व भावना भायी थी।
कंकण से लेकर प्रेरणा, झट मिथिला ठुकराई थी॥५॥

स्वर्गपति ने दस प्रश्नों का, भावपूर्ण उत्तर पाया।
खुश होकर के स्वयं शकेन्द्र ने, ऋषि वर गुण गौरव गाया॥६॥

क्षण भंगुर है तेरी काया, क्षण भंगुर है जग की माया।
खूब खिलाया, खूब पिलाया, फिर भी है नश्वर काया॥७॥

देख-देख तन की सुन्दरता, खुश हो होकर फूल रहा।
लूट गई तेरी रूप सम्पदा, सनत चक्री को भूल रहा॥८॥

वैभव में मतवाला बनकर, झूम रहा जैसे हस्ती।
रावण जैसे चले गये, फिर तेरी कौन भला हस्ती॥९॥

पुद्गल के ये रूप पराये, जिन्हें तू अपना मान रहा।
ज्ञानी कहते इन्हें छोड़ दे, क्यों तू अपनी तान रहा॥१०॥

त्यागी ममता जागी समता, नश्वरता चित्त में लाया।
अनित्य भावना भाकर के ही, भरत चक्री केवल पाया ॥११॥

रोग शत्रु जब तन को घेरा, नहीं किसी का दाव लगा।
आत्मिक शांति तब ही पाता, मन में समता भाव जगा ॥१२॥

स्वयं बांधता स्वयं भोगता, नहीं कोई शरण दाता।
त्राहि-त्राहि करके रोता, स्वयं जगत में दुःख पाता ॥१३॥

जन्म जरा मृत्यु के भय से, भयभीत बना पामर प्राणी।
कुकृत्यों को नहीं छोड़ता, पिला जा रहा दुःख की घाणी ॥१४॥

तीन खण्ड के स्वामी थे पर, मिला नहीं मरते पानी।
पुरजन परिजन पास न आये, बीती थी जब जिन्दगानी।

अहो अनाथी मुनि के सिर में, घोर वेदना छाई थी।
रहे ताकते पारिवारिकजन, चैन पलक नहीं पायी थी ॥१६॥

अरहट माला सम जग लीला, सदा पलटती रहती है।
नहीं जगत में स्थिरवासा, जिन वाणी यूं कहती है ॥१७॥

अपना-अपना किसे पुकारे, जगजीवन तो है सपना।
छोड कल्पना अपने मन की, सत्य नाम प्रभु का जपना ॥१८॥

जग का सुख शाश्वत नहीं होता, जैसे बादल की छाया।
क्यों भरमाया भौतिक सुख में, बिजली सी चंचल माया ॥१९॥

कोई किसी का नहीं है शत्रु, नहीं किसी का मित्र कोई।
कर्माधीन जगत की लीला, क्यों तूने सन्मति खोई ॥२०॥

शालिभद्र क्या रिद्धि पाए, नृप श्रेणिक देखन आया।
संसार भावना भा करके ही, जग बंधन से मुक्ति पाया ॥२१॥

***

३. वह शक्ति हमें दो

वह शक्ति हमें दो दयानिधे।
कर्त्तव्य मार्ग पर डट जावें।
पर-सेवा, पर-उपकार में हम,
निज जीवन सफल बना जावें ॥१॥

हम दीन, दु:खी, निबलों, बिकलों,
के सेवक बन संताप हरें।
जो हैं भूले-भटके अटके
उनको तारें खुद तर जावें ॥२॥

छल, द्वेष, कपट, पाखण्ड, झूठ।
अन्याय से निश-दिन दूर रहें।
जीवन हो शुद्ध, सरल अपना।
शुचि प्रेम सुधा नित बरसावें ॥३॥

निज आन-मान मर्यादा का,
प्रभु ध्यान रहे अभिमान रहे।
जिस देश जाति में जन्म लिया,
बलिदान उसी पर हो जावें ॥४॥

४. मनोरथ तीन उत्तम ये

मनोरथ तीन उत्तम ये, जिनेश्वर नित्य भाता हूँ।
कृपा की आशा रखता हूँ सफल हो शीघ्र चाहता हूँ।।टेर।।

परिग्रह पाप का दल-दल, फँसा हूँ, फँसता जाता हूँ।
घटे थोड़ा बहुत प्रतिदिन, बड़ा ही कष्ट पाता हूँ।।१।।

प्रमादी गृहस्थ जीवन है, अधूरी धर्म करणी है।
बनूँगा कब मुनि मुझमें, हो ऐसी शक्ति चाहता हूँ।।२।।

मोक्ष की है लगन पूरी, न कोई अन्य आशा है।
देह छूटे समाधि से, अन्त शुभ भाव चाहता हूँ।।३।।

दीन हूँ दीनता करता, देवता ! दान तू करना।
मनोरथ पूर्ण सब करना, चरण तेरे पकड़ता हूँ।।४।।

कहे केवल सुनो 'पारस', विरुद अपना निभाना तुम।
कहूँ अब और आगे क्या ? न खोजे शब्द पाता हूँ।।५।।



१. जयंतीबाई के प्रश्न

श्री भगवती सूत्र के १२ वें शतक दूसरे उद्देश्य में 'जयंतिबाई' के प्रश्न और भगवान के उत्तर का वर्णन इस प्रकार है :-

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में कौशाम्बी नाम की नगरी थी। एक समय भगवान महावीर स्वामी वहाँ पधारे। यह समाचार सुनकर सभी नागरिक हर्षित हुए। राजा उदायन आदि वन्दनार्थ गये। जयन्ती श्रमणोपासिका, उदायन नरेश की बुआ थी। वह अपनी भावज-राजमाता मृगावती देवी के साथ प्रभु को वन्दना करने के लिए गई। भगवान ने धर्मोपदेश दिया। धर्मकथा सुनकर परिषद् लौट गई। राजा और रानी भी लौट गये। उस समय जयन्ती श्रमणोपासिका ने भगवान को वन्दना-नमस्कार करके विनयपूर्वक पूछा -

प्रश्न १. - अहो भगवन् ! जीव के भारी होने का क्या कारण है और किस प्रकार जीव हलका होता है ?

उत्तर - हे जयन्ती ! अठारह प्रकार के पापों के आचरण से जीव भारी होता है और इन पापों से विरत होने-त्याग करने से जीव हलका होता है।

प्रश्न २. - अहो भगवन् ! किस कारण से जीव संसार बढ़ाता है और किस कारण से संसार घटता है ?

उत्तर - हे जयन्ती ! १८ पापों के आचरण से जीव संसार बढ़ाता है और १८ पापों से निवृत्त होकर जीव संसार घटाता है।

प्रश्न ३. - अहो भगवन् ! किस कारण से जीव कर्मों की स्थिति बढ़ाता है और किस आचरण से घटाता है ?

उत्तर - हे जयंती ! १८ पापों का आचरण करके जीव कर्म स्थिति बढ़ाता है और १८ पापों का त्याग करके जीव कर्म स्थिति घटाता है।

प्रश्न ४. - अहो भगवन् ! किस कारण से जीव संसार-सागर में परिभ्रमण करता है और किस विधि से जीव संसार सागर को तिर कर पार हो जाता है ?

उत्तर - हे जयन्ती ! १८ पापों [illegible] और १८ पापों [illegible] है।

[illegible]

प्रश्न ५. - अहो भगवन् ! जीवों का भवसिद्धिपना स्वभाव से है या परिणाम से?

उत्तर - हे जयती ! जीवो का भवसिद्धिपना स्वभाव से है, परिणाम से नही।

प्रश्न ६. - अहो भवगन् ! क्या सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे ?

उत्तर - हॉ जयती ! सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे।

प्रश्न ७. - अहो भगवन् ! सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष में चले जाएंगे, तो लोक, भविसिद्धिक जीवों से रहित हो जाएगा। ?

उत्तर - हे जयंती ! 'णो इणट्ठे समट्ठे' यह नही हो सकता, अर्थात् सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष मे जावेगे तो भी यह लोक भवसिद्धिक जीवों से रहित नही होगा।

प्रश्न - अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

उत्तर - हे जयती ! यथा दृष्टान्त जैसे आकाश की श्रेणी अनादि अनन्त है। उसमे से एक-एक परमाणु खण्ड जितना प्रदेश, एक-एक समय मे निकालें, इस प्रकार परमाणु निकालते-निकालते अनन्त अवसर्पिणी उत्तसर्पिणी पूरी हो जाये, तो भी यह आकाश श्रेणी खाली नहीं होती। इसी प्रकार भवसिद्धि जीव मोक्ष जावेगे। तो भी यह लोक भव सिद्धि जीवों से खाली नहीं होगा।

प्रश्न ८. - अहो भगवन् ! जीव सोते हुए अच्छे या जागते हुए अच्छे होते हैं ?

उत्तर - हे जयती ! कोई जीव सोते हुए अच्छे होते है और कोई जीव जागते हुए अच्छे होते है।

प्रश्न - अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

उत्तर - हे जयती ! जो जीव अधर्मी हैं, अधर्म का काम करते है। अधर्म का उपदेश देते है। अधर्म मे आनन्द मानते है, यावत् अधर्म से आजीविका करते है, वे जीव सोते हुए ही अच्छे है। सोते रहने से वे सभी प्राण, भूत, जीव और सत्व को दु:ख नहीं दे पाते है। यावत् परितापना नहीं उपजाते है। अपनी तथा दूसरो की आत्मा को अधर्म में नहीं जोडते है। इस कारण अधर्मी जीव सोते हुए ही अच्छे है। और जो जीव धर्मी है यावत् धर्म से आजीविका करते है, वे जागते हुए अच्छे है। जागते हुए वे सभी प्राण, भूत, जीव और सत्व को सुखकारी होते है। यावत् अपनी तथा दूसरो की आत्मा को धर्म में जोडते हैं।

प्रश्न ९-१० - जिस प्रकार सोते-जागने के प्रश्न-उत्तर कहे, उसी प्रकार बलवान

व निर्बल तथा उद्यमी और आलसी के विषय मे भी कहना चाहिये। इसमें विशेषता यह है कि जिसका उद्यम अच्छा होगा, वह आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी यावत स्वधर्मी की वैयावच्च में अपनी आत्मा को जोडेगा।

प्रश्न ११.- **अहो भगवन् ! श्रोतेन्द्रिय के वश में हुआ जीव, कैसे कर्म बांधता है।**

उत्तर - हे जयंती ! आयुष्य-कर्म को छोडकर बाकी सात कर्मो की प्रकृति यदि ढीली हो तो गाढी-दृढ करता है। थोडे काल की स्थिति हो, तो बहुत काल की स्थिति करता है। मन्द रस वाली हो, तो तीव्र रस वाली करता है। आयुष्य बांधता है अथवा नहीं बांधता, असातावेदनीय कर्म बारम्बार बांधता है और चार गति रूप संसार में परिभ्रमण करता रहता है।

१२ से १५- जिस प्रकार श्रोतेन्द्रिय के विषय में कहा, उसी प्रकार चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय के विषय में भी कहना चाहिये।

जयंती बाई श्रमणोपासिका अपने प्रश्नों का उत्तर सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। उसे पूर्ण संतोष हुआ। वह दीक्षा लेकर और केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गई।



२. श्रावकजी के चार विश्राम

जैसे- १.भार ढोने वाले भार को एक कंधे से दूसरे कंधे पर रखे और पहले कंधे को विश्राम दें - यह पहला विश्राम है। २. भार को चबूतरे आदि पर रखकर मल-मूत्र की बाधा दूर करें, खा-पीकर भूख-प्यास की बाधा दूर करें- यह दूसरा विश्राम है। ३. रात्रि को धर्मशाला आदि में रात भर रहे सोकर दिन भर का श्रम दूर करें - यह तीसरा विश्राम है। ४. जहाँ पर भार पहुँचाना है, ठेठ वहॉ भार पहुँचा दे और निश्चिंत हो जाएं - वह चौथा विश्राम है।

इसी प्रकार १.बारह व्रत और नवकारसी आदि का प्रत्याख्यान धारण करे, यह श्रावक का पहला विश्राम है। २. प्रतिदिन सामायिक और देशावकाशिक व्रत सम्यक्

पाले, यह श्रावक का दूसरा विश्राम है। ३. महीने में छः दिन प्रतिपूर्ण पौषध सम्यक् पाले, यह श्रावक का तीसरा विश्राम है। ४. अंतिम समय मे संलेखना, संथारा करके भक्त प्रत्याख्यान सहित समाधिमरण स्वीकार करें, यह चौथा विश्राम है।

***

३. देव, गुरु धर्म का स्वरूप

अरिहन्तो महदेवो जावज्जीवाए सुसाहुणो गुरुणो।
जिण पण्णतं तत्तं इय सम्मत्तं मए गहियं ।।१।।

अरिहन्त प्रभु मेरे देव है, सम्यक् प्रकार से महाव्रत का पालन करने वाले साधुजन मेरे गुरु है और जिनेश्वर देव द्वारा प्ररूपित धर्म ही मेरा है। यावत् जीवन के लिये यह सम्यक्त्व मैने ग्रहण किया है।

देव - सिद्ध और अरिहन्त प्रभु जो राग-द्वेष से विमुक्त है, वे ही हमारे देव हैं। पंच परमेष्ठि पद में अरिहन्त और सिद्ध देव पद पर प्रतिष्ठित है। अरिहन्त और सिद्ध देव में अन्तर यह है कि सिद्ध भगवान ने ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गौत्र और अन्तराय इन आठ कर्मो को सर्वथा क्षय कर दिया है, वे अशरीरी अयोगी बनकर अजर, अमर पद को प्राप्त कर चुके है जबकि अरिहन्त भगवान ने चार घनघाती कर्म, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय का क्षय किया है। वे भी आयुष्य पूर्ण होने पर सिद्ध बन जाते है। अरिहन्त भगवान तीर्थ का प्रवर्तन करते है। धर्म का मार्ग बताते है। उनकी वाणी सुनकर गणधर सूत्र रूप में गुंथन करते हैं। (अरिहन्त के कई सार्थक नाम है।)

अरिहन्त - शत्रुओ का नाश करने वाले।
जिन - राग-द्वेष को जीतने वाले।
वीतराग - राग-द्वेष आदि कषायों से रहित।
तीर्थकर - साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप तीर्थ की स्थापना करने वाले।
सर्वज्ञ सर्वदर्शी - हस्तामलकवत सबकुछ जानने वाले, सबकुछ देखने वाले।
परमात्मा - परम 'शुद्ध' आत्मा।

जैन धर्म क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, संसारी देवताओं को अपना इष्ट नहीं

मानते हैं। जो स्वयं काम, क्रोध आदि विकारों में फँसे है। वे दूसरे के विकार रहित होने में क्या आदर्श हो सकते हैं इसलिये जैन धर्म में देव वे ही माने जाते हैं जो, राग-द्वेष को जीतने वाले, कर्म रूपी शत्रुओं को नष्ट करने वाले परम शुद्ध आत्मा हों।

गुरु - गुरु पद में आचार्य, उपाध्याय और साधु तीन पदो का समावेश है। ये तीनों पद वीतराग देव की आज्ञा आराधक है।

आचार्यजी - जिनशासन के नायक एवं संचालक होते है।

उपाध्यायजी - जैन आगमों में पारंगत प्रकाण्ड पण्डित होते हैं, वे शास्त्रों का अध्ययन करते हैं एवं कराते है।

साधुजी - सर्वत्यागी, निर्ग्रन्थ मुनिराज होते हैं।

ये तीन पद मोक्षमार्ग के साधक होते हैं तथा निम्न पॉच महाव्रतो का पालन करते है।

१. अहिसा - मन, वचन, काया से किसी भी जीव की हिंसा न करना, न करवाना, न करने वाले का अनुमोदन करना।

२. सत्य - मन, वचन, काया से न झूठ बोलना, न बोलवाना, न बोलने वाले का अनुमोदन करना।

३. अचौर्य - मन, वचन, काया से न स्वयं चोरी करना, न दूसरो से करवाना, न करने वाले का अनुमोदन करना।

४. ब्रह्मचर्य - मन, वचन, काया से न अब्रह्मचर्य का सेवन करना, न करवाना, न करते हुए का अनुमोदन करना।

५. अपरिग्रह - मन, वचन, काया से परिग्रह आदि न रखना, न रखवाना, न रखने वाले का अनुमोदन करना।

गुरु के निर्मल जीवन एवं गुण सम्पन्न स्वरूप को दर्शाने वाले कई सार्थक नाम है -

श्रमण - संयम व तप में श्रम करने वाले।

निर्ग्रन्थ - राग-द्वेष की समस्त ग्रन्थियों को छोडने वाले।

भिक्षु - निर्दोष भिक्षावृत्ति से संयम साधना करने वाले।

यति - पॉच इन्द्रियो का दमन करने वाले।

मुनि - पाप कर्मो में मौन रहने वाले (निरवद्य, वचन बोलने वाले)

ऋषिश्वर - छः काया के जीवों की रक्षा करने वाले।

योगीश्वर - मन, वचन, काया की अशुभ प्रवृत्ति को रोकने वाले।

साधु - साधना करने वाले।

गुरु आरम्भ परिग्रह से रहित इन्द्रियों का दमन करने वाले तथा कषायों का शमन

करने वाले, समस्त पाप कर्मो से निवृत्त होते है। उनका उठना, बैठना, बोलना, चलना, खाना-पीना, विवेकपूर्वक होता है। सत्रह प्रकार के संयम को पालने वाले परिषह को सहन करने वाले निर्दोष भिक्षाचार्य करने वाले होते हैं।

धर्म - जो दुर्गति मे गिरते हुए प्राणियों को धारण करे (रक्षा करे) उसे धर्म कहते हैं। जिनेश्वर देवों द्वारा बताया हुआ आचरण धर्म है। यह अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह रूप है। पापकर्मो का त्याग, कषायों पर विजय पाना, देव, गुरु, धर्म की भक्ति, ज्ञान ध्यान, स्वाध्याय आदि से आत्मा को विशुद्ध एवं पवित्र करने और चारित्र का पालन करना धर्म है। यह श्रावक धर्म एवं मुनि धर्म दो प्रकार का है। (अहिसा, संयम और तप रूप धर्म ही जैन धर्म है।)

१. अहिंसा - सामान्य रूप में हिंसा का अर्थ प्राणियों के प्राणों का हनन करना माना जाता है किन्तु जैन दृष्टि में हिंसा शब्द बहुत विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जैन दृष्टि के अनुसार वह सब हिसा है जो दूसरों को मानसिक वाचिक एव कायिक दृष्टि से कष्ट पहुँचाये। अर्थात् संसार के समस्त प्राणियों की मन, वचन, काया से हिसा न करना, न करवाना, न अनुमोदन करना अहिंसा है। जैन धर्म पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति, त्रस आदि में भी जीव मानता है। उनकी हिंसा का भी निषेध करता है। हिंसा होने पर राग-द्वेष की परिणति होती है और उसमें पाप कर्म का बन्ध होता है। पाप आत्मा को दुर्गति मे ले जाने वाला होता है और अहिसा दुर्गति मे गिरते हुए को बचाती है। अत: अहिंसा को भी धर्म कहा है। अहिसा व्रत सभी धर्मो का प्रमुख एवं जिन प्रवचन का सार है। अहिसा सभी धर्मो का आधार है।

२. संयम - इन्द्रिय और मन का निग्रह करना संयम कहलाता है। अहिसा धर्म पूर्ण पालन के लिये संयम आवश्यक है। सावद्य पापकार्यो से निवृत्त होना संयम है, जिनके द्वारा नवीन कर्मो का बन्ध नहीं होता है। मन, वचन और काया का नियमन करना इनकी प्रवृत्ति मे यतना रखना सयम है। असंयम से होने वाले आश्रव को रोकना संयम धर्म है। पॉच इन्द्रिय का निग्रह, पॉच अव्रतों का त्याग, चार कषाय पर विजय मन, वचन, काया की विरति को संयम कहा जाता है।

३. तप - इच्छाओं का निरोध तप है। जैन धर्म का एकमात्र लक्ष्य मुक्ति को प्राप्त करना है। राग-द्वेष से मुक्त होने के लिए संयम द्वारा नवीन कर्मो का बन्ध रोका जाता है तथा तप के द्वारा पुराने कर्मो का क्षय होता है। जैन धर्म में तप का भी विशिष्ट अर्थ है। तप का अर्थ सिर्फ शारीरिक (देह) दमन नहीं है वरन् इन्द्रियों और वासनाओ पर विजय प्राप्त करना भी तप की श्रेणी मे आता है।

सांसारिक पदार्थो की लालसा से किया गया तप, शुद्ध तप न होकर मात्र काया क्लेश होता है इसलिये तीर्थकर देवों ने फरमाया है :-

१. इस लोक के भौतिक सुखों की लालसा से तप न करें।

२. परलोक के भौतिक सुखों की इच्छा से तप न करें।

३. यश, कीर्ति एवं पूजा महिमा के लिये तप न करे।

४. केवल कर्म निर्जरा के हेतु ही तप की आराधना करें। जैन दर्शन मे बारह प्रकार का तप बताया गया है। **बाह्य तप**- अनशन ऊनोदरी, भिक्षाचर्य, रस परित्याग, काया क्लेश, प्रतिसंलीनता।

आभ्यान्तर तप - प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान, व्युत्सर्ग।

इस प्रकार तपस्या एकान्त आत्म शुद्धि, विषय विकार एवं कषाय को दूर करने एवं कर्म की निर्जरा के लिये की जाती है।

***

४. रत्नत्रय

रत्नत्रय का अर्थ - सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र है जो मोक्ष का मार्ग है।

सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्राणि, मोक्ष मार्ग:

सम्यक् दर्शन - आत्म स्वरूप की प्रतीति, आत्म स्वरूप का विश्वास, वीतराग एवं वीतराग प्ररूपित तत्त्वों पर आस्था होना सम्यक् दर्शन है जिसे अपनी आत्म सत्ता पर विश्वास है, उसे ही परमात्मा की सत्ता पर विश्वास हो सकता है जिसको अपनी आत्मा की सत्ता पर आस्था नहीं है, उसे कर्म पर विश्वास नहीं हो सकता। जिसका कर्म पर विश्वास नहीं उसका लोक, परलोक पर विश्वास नहीं हो सकता तो फिर मोक्ष पर विश्वास कैसे हो ?

जो आत्मवादी है, वही मोक्ष का साधक है। जड और चेतन, स्व और पर, आत्मा और पुद्गल का भेद विज्ञान करना सम्यक् दर्शन है जिसे आत्म बोध एवं चेतना का बोध हो जाता है, वह समझ लेता है कि शरीर एवं आत्मा अलग-अलग है। जीव-अजीव आदि तत्वों के यथार्थ स्वरूप पर अन्त: करण के दृढ संकल्प के साथ श्रद्धा करना सम्यक् दर्शन है।

सम्यक् ज्ञान- आत्मा के विशुद्ध स्वरूप का ज्ञान सम्यक् ज्ञान है। आत्म विज्ञान की उपलब्धि वस्तु के स्वरूप को यथार्थ रूप में जानना (जैसा है वैसा समझना) जीव-

अजीव, पुण्य-पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष इन नव तत्त्वो का यथार्थ रूप से ज्ञान करना सम्यक् ज्ञान है।

सम्यक् ज्ञान के द्वारा साधक अपने स्वरूप को समझ कर अपने विकारों को दूर करने का विचार करता है। राग-द्वेष को क्षय कर केवल ज्ञान को प्राप्त करना सम्यक् ज्ञान की परिपूर्ण अवस्था है।

सम्यक् चारित्र - आत्मा के अस्तित्व की सही प्रतीति हो जाने पर, उस ज्ञान के अनुसार आचरण करने पर ही साधना परिपूर्ण बनती है। सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान के अनुसार अहिसा, सत्य आदि सदाचार का पालन करना सम्यक् चारित्र है। विभाव, मोहजनित विकल्प एवं विचारों को छोड़कर स्वभाव स्वरूप में रमण करना, सम्यक् चारित्र है। यही विशुद्ध संयम है। सर्वोत्कृष्ट शील है।

गृहस्थ के देश सम्यक् चारित्र होता है। साधु के सम्यक् चारित्र की पूर्णता भी केवलज्ञान के बाद ही होती है।

पहले सम्यक् दर्शन (सच्ची श्रद्धा) होता है। सम्यक् दर्शन होते ही उसी क्षण सम्यक् ज्ञान होता है और इसके बाद सम्यक् चारित्र होता है। मोक्ष की मंजिल पर पहुँचने के पहले सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान रूपी दो चक्षु तथा सम्यक् चारित्र रूपी पैरो की आवश्यकता होती है क्योंकि मार्ग को देखने के लिए ज्ञान दर्शन रूपी चक्षु के साथ मंजिल तक पहुँचने के लिए चलने हेतु पैर आवश्यक है। इस प्रकार सम्यग् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र मिलकर मोक्ष के साधन होते हैं। ज्ञान और क्रिया दोनो की परिणति ही रत्नत्रय है और रत्नत्रय की परिपूर्णता का नाम मोक्ष है। यही जीवन का चरम विकास है।

***

सद्गुरु के चरणों में हमने, जिस दिन से शीश झुकाया है।
उस दिन से मेरा जन्म हुआ और सफल हुई यह काया है।।

***

क्रोध प्रीति का नाश करता है।
मान विनय का नाश करता है।
माया मित्रता का नाश करती है।
लोभ सर्वनाश करता है।

***

५. सुभाषित

बुरा-बुरा सबको कहूँ, बुरा न दीसे कोय।
जो घट शोधूं आपणो, तो मोसु बुरा न कोय॥१॥
कहवा में आवे नहीं, अवगुण भर्या अनन्त।
लिखवा में क्यों कर लिखूं, जानो श्री भगवन्त॥२॥
करुणानिधि कृपा करी, कठिन कर्म मोय छेद।
मोह अज्ञान मिथ्यात्व को, करजो ग्रन्थि भेद॥३॥
पतित उद्धारण नाथजी, अपनो विरुद्ध विचार।
भूल चूक सब माहरी, खामिये बारम्बार॥४॥
माफ करो सब माहरा, आज तलक ना दोष।
दीन दयाल देवो मुझे, श्रद्धा शील संतोष॥५॥
आत्म निन्दा शुद्ध भणी गुणवन्त वन्दन भाव।
राग द्वेष पतला करी, सबसे खमत खमाओ॥६॥
छूटूं पिछला पाप से नवा न बांधू कोय।
श्री गुरुदेव प्रसाद से सफल मनोरथ होय॥७॥
परिग्रह ममता तजि करी, पंच महाव्रत धार।
अन्त समय आलोयणा, करूँ संथारो सार॥८॥
तीन मनोरथ ए कह्या, जो ध्यावे नित्य मन।
शक्ति सार वरते सही, पावे शिवसुख घन॥९॥
अरिहन्त देव निर्ग्रन्थ गुरु, संवर निर्जरा धर्म।
केवलिभाषित शास्त्र, यही जैनमत मर्म॥१०॥
आरंभ विषय कषाय तज, शुद्ध समकित व्रत धार।
जिन आज्ञा परमाण कर, निश्चय खेवो पार॥११॥
क्षण निकमो रहणो नहीं, करणो आतम काम।
भणणो गुणणो सीखणो, रमणो ज्ञान आराम॥१२॥

श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा, बोर्ड, बीकानेर

जैन संस्कार पाठ्यक्रम परीक्षा, 2007

(भाग तीन) पूर्णांक : 100

समय 3 सामायिक (सामायिक की हाँ/ ना, कितनी ` ....)

नोट सामायिक नहीं करने वाले परीक्षार्थी के 3 अक कम किए जाएगे।

---

1. रिक्त स्थानो की पूर्ति कीजिए – 10

(अ) अरिहन्तो मह देवो, . . गुरुणो।

(ब) जो भवि प्राणी पद होय।

(स) वावण्ण सद्दहणा।

(द) तस्स सव्वस्स पडिक्कमामि।

(य) ज खडिय दुक्कड।

2. निम्नलिखित शब्द किस पाठ से लिए गए हैं – 10

(अ) अब्भणुण्णाए (ब) पैशुन्य (स) तितीसन्नयराए

(द) रसवणिज्जे (य) सुदिट्ठ (र) परमत्थसथवो

(ल) भड्कुचेष्टा (व) अच्चक्खर (ह) कुविय धातु

(न) अहो काय काय

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए –

(अ) सलेखना के पॉच अतिचार लिखिए। 2½

(ब) दसण समकित के पॉच अतिचार लिखिए। 2½

(स) ज्ञान के 14 अतिचार मे से 10 अतिचार क्रमशः लिखिए। 5

4. निम्नलिखित काव्यो की पूर्ति कीजिए – 15

(अ) निर्धूमवर्ति करोषि।

(ब) अल्पश्रुत वलान्माम्।

(स) जीवन हो बरसावे।

(द) परिग्रह पाता हूँ।

(य) तीन खण्ड जिन्दगानी

5. निम्नलिखित की परिभाषा लिखिए – 10

(अ) दण्डक किसे कहते है ? (ब) आत्मा किसे कहते है ?

(स) लेश्या किसे कहते है ? (द) चारित्र किसे कहते है ?

(य) आश्रव किसे कहते है ?

6 सम्बन्ध जोडिए – 5

(अ) प्रतिवासुदेव - त्रिपृष्टजी

(ब) वासुदेव - तारकजी

(स) चक्रवर्ती - सुप्रभजी
(द) बलदेव - कुन्थुनाथजी
(य) तीर्थंकर - भरतजी

7. (अ) छः काया का थोकडा कौन से सूत्र से लिया गया है ? 2
(व) नीचे लिखे द्वारों के दो–दो प्रकार वताइए –
नाम द्वार 1
गौत्र द्वार
सढाण द्वार

8. कृपया नीचे लिखे वोलों का पच्चीस बोल में क्रम वताकर उनके भेद (या संख्या) बताइए। 5

		क्रम	भेद सख्या
1	उपयोग		
2	आत्मा		
3	लेश्या		
4	भागा		
5	गुणस्थान		

9. निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए –
(अ) जयती बाई के प्रश्न किस सूत्र मे वर्णित है ? 2
(व) किस कारण से जीव ससार बढाता व घटाता है ? 2
(स) कौन से जीव सोते हुए तथा कौन से जीव जागते हुए अच्छे लगते है ? 2
(द) श्रावकजी के चार विश्राम बताइए। 4
(य) रत्नत्रय कौन-कौन से हैं ? 2
(र) पाठ्यक्रम पर आधारित कोई सुभाषित लिखिए। 4

10. सम्वन्ध जोडिए – 5
(अ) छटा व्रत - मृपावाद विरमण व्रत
(व) तीसरा व्रत - अतिथि सविभाग व्रत
(स) वारहवा व्रत - दिशा व्रत
(द) आठवा व्रत - अदत्तादान व्रत
(य) दूसरा व्रत - अनर्थ दड विरमण व्रत

11. भगवान पार्श्वनाथ का पारिवारिक परिचय वताइए – 5
माता-पिता का नाम, जन्मतिथि, दीक्षा, पर्याय, कुल आयुष्य, [illegible]

12. श्राविका सुलसा की कहानी की 2 सीख लिखिए। 2

13. खंदक मुनि ने किस फल को प्रमोदित भाव से छीला था और उसका क्या परिणाम हुआ ? 2

श्री अखिल भारत वर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

मुख्य उद्देश्य

- समता समाज की रचना।
- व्यसन मुक्त राष्ट्र का निर्माण।
- जीवदया, स्वधर्मी सेवा, मानव सेवा की विभिन्न प्रवृत्तियों का संचालन।
- जैन संस्कृति, धर्म, दर्शन और आचार के शाश्वत सिद्धान्तों का लोक भाषा में प्रचार।
- जन कल्याणकारी सहज-सुबोध साहित्य का निर्माण।
- सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र की रक्षा एवं वृद्धि हेतु शिक्षा-दीक्षा की समुचित व्यवस्था।
- समाज में धार्मिक चेतना के अभ्युत्थान हेतु आध्यात्मिक, नैतिक, चारित्रिक, शैक्षणिक विकास के कार्य करना।
- धार्मिक परीक्षा शिविर व शिक्षा के माध्यम से स्वाध्यायी तैयार करना।
- जैन धर्म के विभिन्न पहलुओं को जानने हेतु प्रयासरत शोधार्थियों एवं विद्वानों को यथोचित सहयोग प्रदान करना।
- धार्मिक, आध्यात्मिक व नैतिक शिक्षा हेतु पाठ्यक्रम निर्धारित कर सम्यक् ज्ञान का प्रचार करना।